श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थमाला का पन्द्रहवाँ पुष्प

विचार-रश्मियाँ

लेखक
परम श्रद्धेय पण्डितप्रवर प्रसिद्धवक्ता
राजस्थानकेसरी श्री पुष्कर मुनि जी म. के सुशिष्य
देवेन्द्र मुनि शास्त्री, साहित्यरत्न

संपादक
श्रीचन्द सुराना 'सरस'

प्रकाशक
श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
पदराड़ा (उदयपुर)

पुस्तक
विचार-रश्मियाँ

लेखक
देवेन्द्र मुनि शास्त्री, साहित्यरत्न

सम्पादक
श्रीचन्द सुराना 'सरस'

पुस्तक पृष्ठ २०८

प्रथम प्रकाशन
दीपावली, अक्टूबर १९७१

मूल्य
साधारण सस्काण सात रुपए
प्लाष्टिक कवर युक्त आठ रुपए

सर्वाधिकार लेखकाधीन

प्रकाशक
श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
पदराडा, जि० उदयपुर (राजस्थान)

मुद्रण व्यवस्था
सजय साहित्य सगम
दास बिल्डिग न० ५
आगरा–२

मुद्रक
रामनारायन मेडतवाल
श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस
राजा की मण्डी, आगरा–२

समर्पण

उन ज्ञान के देवता को, जिनके प्रशस्त पथ-प्रदर्शन मे,

मैं साहित्य के क्षेत्र मे गति-प्रगति कर रहा हू,

उन्ही श्रद्धेय गुरुदेव

राजस्थान केशरी, प्रसिद्धवक्ता श्री पुष्कर मुनिजी महाराज

के

कर कमलो मे सादर सभक्ति

—देवेन्द्र मुनि

प्रकाशन में अर्थ सहयोगी

स्वर्गीय घेवरचन्द जी बम्ब, भादवावाला के स्मरणार्थ
मदनलाल घेवरचन्द बम्ब मु० पो० इचलकरंजी
जि० कोल्हापुर (महाराष्ट्र)

प्रकाशकीय

अपने चिन्तनशील पाठको के कर-कमलो मे विचार-रश्मियाँ प्रदान करते हुए अपार आनन्द को अनुभूति हो रही है। पुस्तक के नाम के अनुरूप ही इसमे विचारो का आलोक है, जीवन के व्यापक अनुभवों का निचोड है, ज्ञान का सार है, नीति वचनो का मधुर सकलन है। ये विचार हमारे पथ प्रदर्शक ही नही, अपितु निराशा व विपत्ति के क्षणो मे पावन प्रेरणा प्रदान करने वाले है।

सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट है कि विचारक बुद्धिमान होते है, उनको जो वस्तु आज स्पष्ट दीखती है ससार उस पर कल अमल करता है। उनके प्रशस्त व विमल विचार शाश्वत होते है, उन्हे किसी भी भौगोलिक सीमा व काल की मर्यादा मे आवद्ध नही किया जा सकता।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक राजस्थान केशरी प्रसिद्धवक्ता पण्डित प्रवर श्रद्धेय श्री पुष्कर मुनि जी महाराज के सुयोग्य शिष्य देवेन्द्र मुनि जी, एक विचारक सन्त हैं, वे विचारक के साथ आचारनिष्ठ भी है। नूतन और पुरातन विचारो का उनमे सुमेल है। वे प्रत्येक विषय पर विचार करते है। गहराई से सोचते है और ऐसे चिन्तन-कण प्रस्तुत करते है कि पाठक आनन्द विभोर हो उठता है। उन्होने आज तक साहित्य की अनेक विधाओ पर लिखा है, खूब जम कर लिखा है। कहानी, रूपक, निबन्ध, शोध-प्रबन्ध, व सूक्तिया लिखी

है। 'चिन्तन की चाँदनी' और 'अनुभूति के आलोक मे' मे उनका वैचारिक रूप निखरा है। भारत के चोटी के विद्वानो ने उनकी मुक्त कण्ठ से प्रशसा की है। पाठको ने उन ग्रन्थो को अपनाया है। गुजराती भाषा मे भी वे पुस्तके अनुदित होकर लोकप्रियता प्राप्त कर चुकी है।

प्रस्तुत पुस्तक का सम्पादन श्री श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' ने किया है। सम्पादन के साथ ही प्रूफ सशोधन, व मुद्रण आदि की सम्पूर्ण व्यवस्था उन्होने की है अत उनका जितना आभार माना जाय उतना कम है।

पुस्तक की महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री विश्वम्भर 'अरुण' ने लिखी है जिसके लिए हम उनके और हमारे निकट स्नेही श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' के, जिनके सम्पर्क से श्री 'अरुण' जी का सद्‌भाव हमे मिला, सदा अनुगृहीत रहेगे।

पुस्तक प्रकाशन में जिन उदार सहृदयी सज्जनो ने आत्मीयता के साथ अर्थ सहयोग प्रदान कर हमारे उत्साह को वढाया है, हम उनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करते हुए भविष्य मे उनके मधुर सहयोग की अधिकाधिक अपेक्षा रखते है।



लेखक की कलम से

यग ने लिखा है—अपने विचारो की अच्छी तरह रक्षा करो, क्योकि विचार स्वर्ग मे सुने जाते हैं—Guard well thy thoughts, our thoughts are heard in Heaven श्रीमती स्येटशीन के शब्दो मे कहा जाय तो 'विचार फूलो को चुनने के समान है और सोचना उनको माला मे गूँथना है'—

To hear ideas is to gather Flowers, to think, is to weave them into garlands

स्वामी रामतीर्थ का मत है—'अच्छे विचार रखना भीतरी सुन्दरता है।' विचार का दीपक बुझ जाने पर आचार अधा हो जाता है। आचरण रहित विचार कितने भी श्रेष्ठ क्यो न हो, वे कल्चर मोती के समान हैं। जिसके पास सुन्दर विचार है वह एकान्त मे रहने पर भी कभी एकान्त मे नही है। स्वामी विवेकानन्द ने विचारो की शक्ति पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—'अगर कोई मनुष्य गुफा मे रहे, वही पर उच्च विचार करे और विचार करता हुआ ही मर जाये तो वे विचार कुछ समय के पश्चात् गुफा की दीवारे फाड कर बाहर निकलेगे और सब जगह छा जायेगे तथा अन्त में सारे मानव-समाज को प्रभावित कर देगे।'

मानस-सागर मे विचारो की लहरे उठती रहती है, कितने ही विचार अस्थाई होते है, उनका कोई मूल्य नही होता, कितने ही विचार स्थाई होते है, वे अमूल्य होते है। उन्हीं शाश्वत विचारो का लेखन, आकलन विचार-रश्मियाँ मे किया गया है। ये विचार कुछ

मेरे अपने है और कुछ साहित्य को पढने से, इधर-उधर से कुछ सुनने से, देखने से प्राप्त हुए है, जिन विचारो ने मुझे प्रेरणा दी है, चिन्तन करने को उत्प्रेरित किया है, वे ही विचार इसमे उट्टङ्कित किये गये है ।

परम श्रद्धेय सद्गुरुवर्य राजस्थानकेशरी प्रसिद्धवक्ता पण्डित प्रवर श्री पुष्कर मुनि जी महाराज की असीम कृपा दृष्टि का ही यह फल है कि मैं अनुभव, चिन्तन, मनन के क्षेत्र मे निरन्तर प्रगति कर रहा हूँ, इसमे जो कुछ भी श्रेष्ठता व मौलिकता है वह सद्गुरुदेव जी के आशीर्वाद का ही सुफल है ।

सम्पादन कलामर्मज्ञ, स्नेह-सौजन्यमूर्ति श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' ने प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रेम-पूर्ण सम्पादन किया है, साथ ही ग्रन्थ को मुद्रण कला व आधुनिक साज-सज्जा से सुसज्जित बना दिया है अत उनकी स्मति सदा चमकती रहेगी ।

सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री विश्वम्भर 'अरुण' ने मेरे आग्रह को मान्य रख कर सुन्दर भूमिका लिखने का कष्ट किया है, उसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ । अन्त मे उन सभी का आभार मानता हूँ जिनका मुझे सहकार व सहयोग मिला है ।

मेघजी थोभण जैन धर्मस्थानक
१७० कादावाडी वम्बई–४
दीपावली

—देवेन्द्र मुनि

भूमिका

आज भौतिकता से त्रस्त युग में लगता है, मनुष्य का ऐसा कुछ हाथ से खो गया है जिसे वह बार-बार खोजना चाहता है लेकिन खोज नहीं पाता। आपाधापी ऐसी मची हुई है कि अब तो वह यह भी भूल गया है कि वह किस वस्तु को खोजना चाहता था। वायु म भटके हुए पीले पत्तं के समान अथवा सागर की उत्ताल तरगो मे पडे हुए नारियल के समान उसकी जिन्दगी भटक रही है। पानी की प्यास से हृदय ताडते हुए हरिण के से पथराये नेत्रो से वह चारो और निगाह पसारता है—सात्वना के दो मुखद बोल के लिये, आत्मिक अतृप्ति को बुझाने वाली दो बूंद अमृत के लिये। पर, क्या वह उसे सुलभ हो पाता है? उसकी पथरायी हुई निगाहे तलाश मे भटकी ही रह जाती है।

ऐसे में, साधना के अडिग पथ पर चलने वाले सतो-महात्माओ के बोल जीवन मे मिसरी घोल देते है, कुछेक क्षणो के लिये जीवन की कडुवाहट को बिसर कर मानव मन अपने भीतर मिठास का अनुभव करता है। अपने जीवन को साधना-पथ पर डाल देने वाले श्री देवेन्द्र मुनि की 'विचार-रश्मियाँ' पुस्तक को निरखने-परखने से मुझे कुछ ऐसा ही अनुभव हुआ। देवेन्द्र मुनिजी की इससे पूर्व 'अनुभूति के आलोक' मे और 'चिंतन की चाँदनी' आदि कई पुस्तके भी प्रकाश मे आ चुकी हैं परन्तु प्रस्तुत कृति 'विचार-रश्मिया' पूर्वोक्त पुस्तको से कुछ विशिष्ट है। अपनी इस विशिष्टता के कारण ही यह मुझे भी रुचिकर और तोषप्रद लगी है।

अपनी पैनी निगाहो से देवेन्द्र मुनि ने जो कुछ देखा है, मर्मी हृदय से जो अनुभव किया है, विचारक के स्तर

पर जो कुछ परखा है – उन्ही सवको उन्होने अपनी सधी हुई लेखनी से इस कृति में प्रस्तुत कर दिया है। मुनिप्रवर ने कहानी, रूपक, दृष्टान्त, सूक्तियो आदि विविध विधियो से अपनी वातो को रखने की चेष्टा की है और मेरे मत से इस चेष्टा मे सफल भी हुए है। अपने जीवन से चुनकर कुछ प्रसगो, सस्मरणो और अनुभूतियो को भी उन्होने इसमे टॉक दिया है जिससे कथन मे चारुता के साथ मुवोधता का समावेश भी हो गया है।

मात्र इसे अध्यात्म या धर्मपरक कृति के रूप मे नही देखना चाहिये। सामान्य पाठको को जिससे सतोष मिल जाये, विचारशील पाठको को भी जिससे कुछ स्फुरण मिल जाये—ऐसी भी सामग्री है इस पुस्तक में। इस सामग्री को सुरुचिपूर्ण ढग से सजाने सवारने मे श्रीचन्द्र सुराना 'सरस' ने भी कम श्रम नही किया है। विना कुछ वनावट वनाये उन्होने मुनिप्रवर-प्रसूत सामग्री को सुव्यवस्था व रम्यता प्रदान की है। सचमुच इससे भी पुस्तक के सौन्दर्य मे वृद्धि हुई है।

मैं हृदय से इस पुस्तक का स्वागत करता हू और आशा करता हू, पाठक इन विचारो की रश्मियो से अपने जीवन के गली-गलियारो को जगमगा लेगे।

दीपावली
२०२८

—विश्वम्भर 'अरुण'

सम्पादकीय

मानव की श्रेष्ठता का सबसे बडा आधार है उसकी विचार-शीलता। पशुता के बाडे से निकल कर मानवता के नन्दनवन तक पहुचने की उसकी लबी यात्रा का रथ है विचार। विचारो के रथ पर आरूढ होकर ही मानव ने जीवन के नदनवन में प्रवेश किया है, उसका आनन्द और उल्लास प्राप्त किया है।

मानव स्वय विचार करता है, साथ ही वह दूसरो के विचार सुनता है, समझता है, ग्रहण करता है, और अपने विचार दूसरो को देता भी है - विचारो के आदान-प्रदान की इस महनीय परम्परा ने ही विकास के समस्त द्वार खोले है, समृद्धि एव अभिवृद्धि के पथ प्रशस्त किये है।

यदि कोई अपने विचारो की थाती को कजूस धनी की तरह मन की तिजोरी में छिपाकर वाणी का ताला बद करके बैठ जाए तो वह स्वय का ही नही, मानव जाति का भी अपकार करता है, अपनी प्राकृतिक विभूति से स्वय को ही नही, अपितु मानवता को भी वञ्चित रखता है।

विचारो की महक तो चंदन की तरह है, जो जितनी घिसी जाय, उतनी ही अधिक फैलती है और अपनी मधुर महक से जगजीवन को आप्यायित करती रहती है। सैकडो-हजारो विचारको ने आज तक मानव जाति को अपनी विचार सौरभ से आप्रीणित किया है, मार्ग-दर्शन दिया है और विमूढता के क्षणो मे आलोक दिखाया है।

'विचार-रश्मिया' मे इसीप्रकार का एक शुभ सकल्प है, सत्प्रयत्न है—श्री देवेन्द्र मुनिजी शास्त्री का। यह कहना उचित नही होगा कि इसमे सिर्फ उन्ही की ही विचार-चिंतन-रश्मियाँ है।

विचार जब रश्मि बन गई है तो वह सूर्य की रश्मि की भाति सार्वजनीन हो जाती है। उस पर किसी का सिक्का रही रहता और उनकी सीमा भी असीम हो जाती है। यही बात प्रस्तुत सन्दर्भ मे समझनी चाहिए। हाँ, फिर भी इसमे श्री देवेन्द्र मुनिजी के कृतित्व का एक स्पष्ट व सुदृढ आधार है और वह है विचारो मे अनुभव की प्रेरकता और शब्दो की सजीवता। श्री देवेन्द्र मुनिजी के व्यापक चिन्तन-मनन के इन विचारसूत्रो पर भले ही विश्व के विभिन्न विचारको का प्रतिबिम्ब पडा हो, किंतु लगता है इनकी व्यजना उनकी अपनी अनुभव रसपूर्ण लेखिनी से ही हुई है, इसलिए विचारो मे सर्वत्र ताजगी, स्फूर्ति और अनुभव की महक मिलती है।

श्री देवेन्द्र मुनि जी स्थानकवासी जैनसमाज के उदीयमान लेखक और विचारक सत है। उनका अध्ययन काफी व्यापक है और चयनकार का कौशल भी। अब तक विभिन्न विषयो पर वे कई दर्जन पुस्तके लिख चुके हे और लिखते ही जा रहे है। विचार-सूत्रो की विधा मे उनकी यह तीसरी कृति है। इससे पूर्व **'चिन्तन की चाँदनी और अनुभूति के आलोक मे'** प्रकाशित हो चुकी है, अब विचार-रश्मिया पाठको के हाथो मे प्रस्तुत की जा रही है।

मुझे प्रसन्नता है कि मुनि जी की इन तीनो पुस्तको के सपादन का सुअवसर मुझे ही मिला है। इसमे उनका सहज स्नेह एव आत्मीयभाव ही मुख्य मानता हूं। भाषा, शैली और विषय की दृष्टि से मैने इसमे कुछ कलम स्पर्श किया है, इसका स्वय मुझे आल्हाद है। आशा है, पाठको को भी प्रस्तुत कृति आल्हादकारक लगेगी।

शरद् पूर्णिमा
४-१०-७१
आगरा

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

अनुक्रमणिका



विचार-रश्मियां

अध्यात्म

और

धर्म

प्रथम-किरण

औपपातिकसूत्र मे आचार्य ने प्रभु के धर्मप्रवचन का आभार मानते हुए कहा है—

धम्म ण आइक्खमाणा तुब्भे उवसमं आइक्खह,
उवसम आइक्खमाणा विवेगं आइक्खह ।

प्रभो ! आपने धर्म का उपदेश देते हुए उपशम का उपदेश दिया और उपशम का उपदेश देते हुए विवेक का उपदेश दिया ।

वास्तव मे धर्म के ये ही दो मूल आधार हैं—उपशम और विवेक ।

उपशम—शाति, समता, तितिक्षा, वैराग्य, निर्लोभता यह सब—उपशम धर्म का परिवार है ।

और ज्ञान, विचार, स्वात्मदर्शन आदि विवेकधर्म की शाखाएँ है ।

उपशम और विवेक—अपने चिंतनरूप मे अध्यात्म है, वैराग्य है और व्यवहाररूप मे धर्म है, क्रिया है । इस प्रकार अध्यात्म और धर्म के कोण पर अकित ये विचार रश्मियाँ प्रस्तुत हैं ।

अध्यात्म और धर्म

भगवान की सेवा

जो मनुष्य भगवान की सेवा करना चाहता है, उसे मानव की सेवा करनी चाहिए। मानव का हृदय ही भगवान का मदिर है। इस हृदय को प्रसन्न करना, प्रभु को प्रसन्न करना है, मानव हृदय को पीडा पहुचाना प्रभु को कष्ट देना है। एक शायर ने कहा है—

> दिल के अंदर है खुदा दिल से खुदा नहिं दूर है।
> दिल को सताना ऐ मिया ! उस रब को कब मंजूर है ?

करुणा की भाषा

करुणा की भाषा ऐसी विलक्षण भाषा है, जिसे गू गे बोल सकते है, बहरे सुन सकते है।

प्रेम की भाषा अग्नि को शात कर सकती है, और पत्थर को पिघला सकती है।

प्रेम के प्रहार से तलवार टूट जाती है, और टूटे हृदय जुड़ जाते है।

भगवान के सामने रो

मन! दुख आ पड़ने पर रोता क्यों है? क्या रोने से दुःख नष्ट हो जायेंगे?

यदि तुझे रोने की ही आदत है तो, दुःख में घबरा कर नहीं, किन्तु अपने पापों पर पछता कर रो! किसी और के सामने नहीं, किंतु अपने ही सामने या अपने भगवान के सामने रो! और दिल खोलकर रो! ऐसा रोना रो, कि फिर कभी किसी के सामने रोना ही न पड़े।

मन! रो ना! यदि रोना है तो सच्चा रोना रो कि बार-बार रोना न पड़े।

भीतर का दृश्य

अध्यात्मयोगी श्री आनन्दघनजी कहीं गुफा में ध्यान कर रहे थे। जगल का प्राकृतिक वातावरण बहुत ही सुन्दर था। झरने बह रहे थे, दूर-दूर तक हरियाली बिछी थी और सुगधित मद हवा चल रही थी। कुछ भक्त लोग उनके दर्शन करने वहा पहुचे। भीतर मे आनदघनजी को बैठे देखकर बोले—गुरुदेव! भीतर क्यो बैठे है? बाहर आकर देखिए, कितना मनोहारी सुहावना दृश्य है?

अध्यात्मरस-लीन योगीराज ने हसकर उत्तर दिया—"तुम लोग बाहर क्या देखते हो? यह सुषमा तो क्षणिक है, भीतर आओ! और अन्तरआत्मा की अनुपम छटा के दर्शन करो। ये दृश्य सदा सुहावने और रमणीय है!"

इसीलिए तो भगवान महावीर ने उपदेश किया है—अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ—अपनी आत्मा को ही देखो, उसकी छटा का आनन्द लो और उस पर ही अपना शासन जमाओ।

अपने को जानो

जो दूसरो को जानता है वह समझदार है, किंतु जो अपने को जानता है वह ज्ञानी है। समझदार से ज्ञानी वडा है।

जो दूसरो को जीतता है वह वीर है, किन्तु जो अपने विकारो को जीतता है वह महावीर है।

तेरी आत्मा ही सोना है

ससार जड सोने के लिए, और भौतिक समृद्धि के लिए इस अमूल्य मानवजीवन को वर्वाद कर रहा है, उसे नही मालूम कि सच्चा सोना और सच्ची सिद्धि तो उसके भीतर ही छिपी है, जिसे तप, त्याग एव सयम के द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

प्राचीन समय मे सिद्ध नागार्जुन ने वडे परिश्रम के साथ स्वर्ण-सिद्धिरस तैयार किया था। इस रस का स्पर्श करते ही लोहा सोना वन जाता। नागार्जुन ने इस रस की एक कूपी प्रसिद्ध सिद्ध योगीराज पादलिप्तसूरि की सेवा मे अपने शिष्य के साथ भेजी।

शिष्य ने जव वह स्वर्ण-रस पादलिप्त सूरि को भेट करके कहा—
—"अनेक वर्षो के कठोर परिश्रम से यह स्वर्ण-सिद्धि रस तैयार किया गया है, जो आपके चरणो मे भेट है।"

पादलिप्तसूरि ने उस कूपी को एक पत्थर पर पटक कर फोड डाली। सव रस मिट्टी में मिल गया। शिष्य ने नागार्जुन को सूचना दी तो वे भी खिन्न होकर आये। पादलिप्तसूरि ने कहा—तूने व्यर्थ ही अपना अमूल्य समय गवाया। वोल! तुझे कितना सोना चाहिए, और एक शिला पर पेशाव किया तो समूची शिला सोने की होगई।

नागार्जुन चकित होकर देखते रह गये। पादलिप्तसूरि वोले—
"इन वाहर की सिद्धियो मे क्या रखा है? इस आत्मा को ही रसकूपी वनाओ जो ससार के हर अशुद्ध पदार्थ रूप लोहे को छूकर सोना

वनादे। उसके लिए बाहर मे श्रम करने की जरूरत नही, किंतु भीतर के शुभ ध्यान, चितन एव साधना करने की जरूरत है।"[1]

धर्म

जो धर्म का पालन करता है, धर्म उसीकी रक्षा करता है। एक गुजराती सूक्ति है—

खेड़े तेनुं खेतर, मारे तेनी तलवार,
भजे तेना भगवान, पाले तेनो धर्म।

वास्तव मे तलवार रखने से तलवारधारी की रक्षा नही हो सकती, किन्तु जो तलवार का उपयोग करना जानता है, तलवार उसी की होती है। ऐसे ही जो प्रभु की उपासना करता है, उन्हे प्रसन्न करता है, प्रभु उसी पर प्रसन्न होते है और जो धर्म को अपने आचरण मे लाता है, धर्म भी उसी के जीवन में उतरता है और उसका रक्षक वनता है।

धर्म का मूल

धर्म का मूल क्या है ?

इस प्रश्न पर विद्वानो ने अनेक प्रकार से समाधान दिये है।

१ भगवान महावीर ने बताया है—

धम्मस्स विणओ मूलं— दशवै० ९।२।२

धर्म का मूल—उत्पत्तिस्थान विनय है, विनय से आत्मा नम्र-मृदु बनती है। मुलायम भूमि मे जैसे बीज अकुरित हो सकता है, वैसे ही मृदु मन मे धर्म का अकुर फूट सकता है। कडी भूमि खेती के अयोग्य है। कडा-अहंकारी मन धर्म की खेती के योग्य नही है।

२ महाभारत में बताया है—

सत्येनोत्पद्यते धर्मः दयादानाद् विवर्धते —शातिपर्व १७।१०१

---

१ इसीप्रकार की घटना योगीराज आनन्दघनजी के जीवन मे भी आती है।

धर्म सत्य से उत्पन्न होता है, दया और दान से उसकी वृद्धि होती है।

३ धर्म का मूल समता है। जिसके मन में समता है, शाति, वैराग्य और सहनशीलता है, वह धर्म की आराधना कर सकता है।

४. दर्शनशुद्धि नामक ग्रथ में धर्म के छह मूल वताये है

> जीवदया सच्चवयण
> परधणपरिवज्जणं सुसील च।
> खंति, पंचिंदियनिग्गहो य
> धम्मस्स मूलाइं।

जीवदया, सत्यवचन, परधन का त्याग, ब्रह्मचर्य, क्षमा, और इन्द्रियो का निग्रह ये छह धर्म के मूल है।

५ भक्त कवि संत तुलसीदास जी ने भी दया को ही धर्म का मूल वताया है—"**दया धर्म का मूल है ...**"।

धर्ममय जीवन

१ जो धर्म का आचरण करता हुआ मर गया, वह मर कर भी ससार मे अमर होगया, किंतु जो जीता हुआ भी धर्म का पालन नही करता वह संसार मे जीता हुआ भी मृतक तुल्य है।

सत्य

- जैन धर्म के अनुसार—सत्य के तीन लक्षण है
  १ कठोर और हिसाकारी भापा का त्याग,
  २. मधुर, हितकारी, और यथार्थवचन बोलना,
  ३ जेसा सोचे वेसा वोले,—जैसा वोले वैसा करे,
- लोभ, अहकार और स्वार्थ के साथ सत्य उसी प्रकार नही रह सकता, जिस प्रकार चौर, लम्पट और कुकुर्मी के साथ सती नही रह सकती।

- सत्य और सती का स्वभाव एक जैसा है, दोनो ही जीवन की उज्ज्वलता को पसद करते हैं।
- सत्य—दूध जैसा उज्ज्वल, आकाश जेसा विशाल, जल जैसा शीतल और अमृत जैसा मधुर होता है।
- जेसे खुली छतवाले मकान मे ही सूर्य का प्रकाश पड सकता है, और हवा का प्रवेश हो सकता है, उसी प्रकार आग्रह से मुक्त खुले हृदय में ही सत्य का दर्शन हो सकता है।
- हीरा जैसे पृथ्वी के गर्भ मे मिलता है, मोती जेसे सागर की गहराई से प्राप्त होता है, उसी प्रकार सत्य हृदय की गहराई से चिन्तन द्वारा प्राप्त किया जाता हे।
- जैसे पृथ्वी के भीतर से मिट्टी का तेल केरोसिन भी प्राप्त होता है, और जल भी। तेल के भी कुअे होते है, और जल के भी। किंतु जल प्यास बुझाता है, आग शात करता है जबकि केरोसिन आग लगाता है,
  इसी प्रकार सत्य और असत्य दोनो ही मनुष्य के हृदय के कुए से निकलते है, किंतु असत्य मनुष्य को डुबो देता है, नष्ट कर देता है, जबकि सत्य उसका कल्याण करता है, उसे ससार सागर से पार उतार देता है।

सत्य की आराधना

सत्य की आराधना छह प्रकार से की जाती है—

१. सत्यवचन—झूठ न बोलना, निंदा न करना, कठोर शब्द न बोलना,
२ सत्यकर्म—अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य आदि का आचरण।
३ सत्यविचार (सकल्प)—हमेशा सबके कल्याण की कामना करना, ऊँचे विचार करना।
४ सत्यपरिश्रम—आत्म जागृति के लिए उद्यम करते रहना।
५. सत्यमनन—हर्ष शोक आदि मे समभाव रखना।

६ सत्य आनन्द—परोपकार में प्रसन्नता का अनुभव करना, शुद्ध ध्यान आदि करना।

* सोना अग्नि से शुद्ध होता है, वस्त्र, वर्तन और शरीर जल से तथा मिट्टी से शुद्ध होते है, जल फिटकरी या वस्त्र से तथा घाव आदि स्पिरिट से शुद्ध किये जाते है, वैसे ही हृदय सत्य से शुद्ध होता है—

मनः सत्येन शुद्ध्यति— मनुस्मृति ५।१०९

मन सत्य मे शुद्ध होता है।

सत्य को हजम करने की क्षमता

लोग सत्य की महिमा तो गाते है, और अपने को सत्य का दावेदार भी वताते है, किंतु सत्य को सुनकर हजम करने की शक्ति उनमे नही होती।

एक वार वादशाह औरगजेव जव नमाज पढने को जा रहा था तो वीच ही मे कविवर भूषण से एक वात चल पडी तो औरगजेब वोला—हिन्दू कवियो मे आजकल कोई भी सच्ची सुनानेवाला नही रहा।

भूषण ने टोकते हुए कहा—हजूर! सच तो यह है कि कोई सुनने वाला नही रहा।

औरगजेव वोला—मै सुनने वाला हू, कोई सुनाए तव ?

तव भूषण ने कहा—वाप को कैद करके, एव भाइयो को कत्ल करके आपका नमाज पढना व्यर्थ है। यह सुनते ही औरगजेव क्रुद्ध होगया। और भूषण को निकाल दिया। भूषण कवि ने छत्रपति शिवाजी की शरण ली।

इसीलिए तो कहावत है—

सांच कह्यां मा मारै
सांच बोल र लड़ाई मोल लेवणी है !

- सत तुलसीदास जी ने भी इसी बात को यों कहा है—

  साच कहूँ तो मारै लट्ठा, झूठै जग पतियाही।
  गलिया तो गौरस फिरै, मदिरा बइठि बिकाही।

- ससार में मिट्टी से लोहा अधिक कीमती है, लोहे से पीतल, पीतल से ताबा, तावे से स्टील, स्टील से चादी, चादी से सोना, सोने से माणिक-मोती, मोती से भी अधिक कीमती है हीरा, और हीरे से भी अधिक कीमती है—जीवन, प्राण! किंतु प्राणो से भी अधिक कीमती है सत्य!
- महाभारत (आदिपर्व) मे वताया है—

सब वेदो का अध्ययन, और सब तीर्थो की यात्रा से भी वढकर है एक सत्यवचन!

दया

एक दया ही मनुष्य के करोडो शुभ कार्य करने मे समर्थ है। इसीलिए आचार्य कहते है—

दया कोडिकल्लाणजणणी

दयाशून्य दीक्षा, दीक्षा नही, दयारहित शिक्षा भी शिक्षा नही, और दयारहित भिक्षा भी भिक्षा नही है। दया शून्य—दान, ध्यान और ज्ञान निरर्थक है।

मुहम्मद साहब का एक कथन मुझे याद आता है— जो दूसरो पर रहम करता है, उस पर रहमान रहम करता है। यदि तुम जमीनवालो पर रहम करोगे तो आसमानवाला (खुदा) तुम पर जरूर रहम करेगा।

- ज्ञाता सूत्र साक्षी है—मेघकुमार ने हाथी के भव में दया की तो उस दया के प्रभाव मे वह पशु से मनुष्य वन गया।

  दया—पशु को मनुष्य वना सकती है, मनुष्य को भगवान वना सकती है।
- रूप का क्या देखना, गुण को देखो!

कुल का क्या देखना, शील को देखो !
विद्या का क्या देखना, प्रतिभा को देखो !
तप का क्या देखना, क्षमा को देखो !
धर्म का क्या देखना, दया को देखो !

• एक कहानी है—ब्रह्माजी सृष्टि बनाने के बाद मनुष्य की रचना करने लगे तो सत्य ने कहा—जगत्पिता ! मनुष्य को मत बनाइये ! यह मेरा गला घोट देगा।

न्याय ने भी ने कहा—यह स्वार्थवश मेरा भी नाश कर देगा, अन्याय करता रहेगा, अत. इसे मत बनाइये।

शांति ने कहा—जब मनुष्य सत्य और न्याय नही रहने देगा तो मेरा तो अपने आप ही डेरा कूच हो जायेगा !

तब परमात्मा की छोटी पुत्री दया ने कहा—पिताजी ! आप नि सकोच होकर मनुष्य का निर्माण कीजिये ! मै उसे सदा अपने मार्ग पर चलाती रहूगी।

सच है जब तक मनुष्य के हृदय मे दया रहती है, वह सब अन्यायो से बच सकता है।

ब्रह्मचर्य

'ब्रह्मचर्य' शब्द पर विचार करने से उसके तीन अर्थ हमारे सामने आते है।

ब्रह्म—वीर्य, आत्मा और विद्या।

चर्य—रक्षण, चितन और अध्ययन।

ब्रह्म और चर्य दोनो शब्दो को जोडने से ये अर्थ होते है—

वीर्यरक्षण
आत्मचितन
विद्याध्ययन

वास्तव में इन तीनो अर्थो की साधना ही ब्रह्मचर्य का सम्पूर्ण रूप बनता है।

साधक

साधक का भोजन सिर्फ भूख मिटाने के लिए होना चाहिए, स्वाद के लिए नही।

साधक का वस्त्र-धारण—सिर्फ लज्जा या शीत-ताप आदि निवारण के लिए होना चाहिए, सुन्दरता के लिए नही।

साधक का भाषण-सभाषण—सिर्फ उपदेश या धर्म-तत्व बताने के लिए होना चाहिए, विद्वत्ता के प्रदर्शन और लोको के मनोरजन के लिए नही।

साधक की साधना, क्रियाकाण्ड—आत्मा की शुद्धि के लिए होने चाहिए, लोगो मे कीर्ति या प्रभाव बढाने के लिए नही।

सच्चा त्याग

जिस वस्तु को त्याग दिया, उस पर फिर से मन नही जाना चाहिए। जैसे वमन करने के बाद फिर उसे खाने का मन नही होता, वैसे ही त्याग करने के बाद फिर उसे भोगने का मन नही हो तो समझो सच्चा त्याग है।

साप कचुली को छोडकर फिर वापस उसमे फसना नही चाहता, पक्षी पिंजरे से छूट कर फिर उसमे बधना नही चाहता, इसी प्रकार वैरागी त्याग करके फिर से भोगो के बधन मे पडना नही चाहता।

त्याग के पीछे लक्ष्मी

जहाँ त्याग होता है, वहाँ समृद्धि अपने आप दौडी आती है। जैसे छाया को पकडने दौडो तो वह आगे-आगे निकल जाती है, किन्तु उससे मुँह मोडने पर वही पीछे आकर खडी हो जाती है। ऐसे ही प्रसिद्धि मे मुँह मोडो तो सिद्धि अपने आप मिल जाती है, ऋद्धि के पीछे दौडना छोडो तो समृद्धि चरणो मे आकर बैठ जाती है।

प्राचीन ग्रन्थो मे तीर्थकरो का एक अतिशय बताया गया है—

"अङ्घ्रिन्यासे च चामीकरपंकजानि ।" अर्थात् जहाँ पर तीर्थकरदेव के चरण टिकते है वहाँ पर सोने के कमल खिल जाते है।

इसका क्या यह सीधा-सा अर्थ नही है कि त्याग की महान विभूतियो के पीछे लक्ष्मी दौडी-दौडी फिरती है, उनके चरणो में विभूतियां छिपी रहती है।

आसक्ति

जहाँ आसक्ति है, वहाँ सव दु ख है। जब आसक्ति छूटेगी तव दु ख भी अपने आप छूट जायेगे।

श्रीमद् भागवत में दत्तात्रेय जी की कथा है। एक बार वे कही जा रहे थे। एक कुरर पक्षी चोच मे मास का टुकडा दबाकर कही उडा जा रहा था, कौवे, चील आदि उससे छीनने के लिए उसका पीछा करने लगे, वार-वार चोचो से उस पर हमला कर घायल करने लगे। कुरर पक्षी ने हारकर मास का टुकडा छोड दिया। वस पक्षियो ने उसका पीछा छोड दिया और वह शाति से एक वृक्ष पर जा बैठा।

यह दृश्य देखकर दत्तात्रेय जी ने उसे गुरु मानते हुए कहा—जव तक मनुष्य आसक्ति रूप मास का टुकडा पकडकर रखता है, तभी तक ससार मे, भाई, बन्धु मित्र एव सरकार तथा चोर उससे छीनने के लिए उसका पीछा करते है, तथा उसे परेशान करते है। धन पर से आसक्ति हट गई, फिर कोई कष्ट नही देता। अनासक्त मनुष्य ससार मे सुख की नीद सो सकता।

> जहा चाह वहा आह है, वनिये बेपरवाह,
> चाह जिन्हो की मिटगई वे शाहन के शाह।

कवीर ने कहा है—

> मै न मरी, मै मर-मर हारी,
> मै जो मरी, फिर मै न मरी।

मै (आदमी) मर-मर कर हार गया, किन्तु यह मै (अहकार

आसक्ति) यह नही मरी है। जिस दिन यह मैं मर जायेगी उस दिन फिर मुझे मरने की कोई जरूरत नही, मै (अहकार) मरने पर मैं (स्वय) अमर हो जायेगा।

मारक-तारक

दो अक्षरो का एक शब्द है—'मम' (मेरापन) यह मनुष्य को भव सागर मे डुबो देता है। किंतु इसके पीछे, यदिएक शब्द और बढ़ाकर 'न मम' (निर्ममत्व) कर दे तो यही तारने वाला बन जायेगा। मारक भी तारक बन जायेगा।

तीन अक्षर का एक शब्द है—'ममता' यह भी मारक है, किन्तु यदि इसके पहले अक्षर को 'म' के बदले 'स' कर दिया जाय अर्थात् 'ममता' को 'समता' मे बदल दे तो वही तारक बन जायेगी।

धूल पर धूल

जब हृदय मे सतोष होता है, तो ससार के सब धन धूल के समान प्रतीत होते हैं। पराई वस्तु पत्थर जैसी लगती है।

कहते हैं पढरपुर (सन् १३१३) एक सेठ रहते थे—राका। उनकी पत्नी का नाम था 'बाका।' दोनो ही बड़े धर्मात्मा और अद्भुत सतोषी थे। उनकी निर्लोभता की प्रशसा सुनकर एक देवता परीक्षा करने आया। सेठ-सेठानी कही जा रहे थे। देवता ने रास्ते मे एक सोने की मोहरो से भरी थैली रख दी। राका ने उसे देखा तो सोचा—किसी का मन बिगड़ न जाय अत· उस पर धूल डाल दी। पीछे-पीछे चली आती सेठानी बाका ने देखकर कहा—"महाराज! धूल पर धूल डालने की क्या जरूरत है?" देवता ने दोनो की निर्लोभता देखी तो उनकी प्रशसा करके नमस्कार किया।

इच्छा

* इच्छा के अनेक नाम हैं—आशा, लालसा, कामना, तृष्णा

आदि । वह वैश्या की तरह अनेकानेक रूप बदलती है और नये-नये रूप बनाकर मनुष्य को छलती रहती है ।

- इच्छा समुद्र का सब पानी पीकर भी प्यासी रहती है, धरती का सब अन्न खाकर भी भूखी रहती है, और ससार का समस्त धन वैभव पाकर भी दरिद्र बनी रहती है ।
- जो इच्छा का स्वामी बन जाता है, वह समस्त ससार का स्वामी बन सकता है ।

एक कवि ने कहा है—

ता लग जोगी जगत गुरु जा लगि रहत निराश ।
जब आशा मन मे जगी, जग गुरु जोगी दास ।।

- एक विचारक ने कहा है—

जो सिर्फ इस लोक का सुख चाहते है—वे क्रूर है ।
जो परलोक का सुख चाहते है—वे मजदूर है ।
किंतु जो आत्मा औरपरमात्मा को चाहते है—वे सच्चे शूरहै ।

- अभावपूर्ति की भावना इच्छा है, अत्यावश्यक वस्तु की कामना 'स्पृहा' है धन बढाने की इच्छा 'तृष्णा' और प्राप्तवस्तु को स्थिर रखने की भावना 'वासना' कही जाती है ।

तृष्णा

मनुष्य का तन तो पॉच-छ· फुट लम्बा होता है । जिसमे सिर्फ आधा पौन फुट पेट समझ लो, और उसमे पाव-आधासेर अन्न से अधिक नही समा सकता, किंतु उसका मन लाखो मन खाकर भी नही भर सकता । इसीलिए कहा है—

तन की तृष्णा तनिक है तीन पाव के सेर ।
मन की तृष्णा अनन्त है, गिले मेर का मेर ।।

एक बार यूनान के बादशाह सिकन्दर ने एक फकीर को खुश करके उससे समूची पृथ्वी का राज्य प्राप्त करने का वरदान मागा ।

फकीर ने बादशाह को एक खोपडी दी और कहा—इस खोपडी को अनाज से भर देना, यह पूरी भरते ही तुम पृथ्वी के राजा बन जाओगे।"

सिकन्दर ने उस खोपडी मे हजारो मन अन्न भरा, फिर भी वह खोपडी भरी नही। यह देखकर सिकन्दर ने फकीर से पूछा, तो फकीर ने कहा—यह मनुष्य की खोपडी है, ससार मे सब गड्ढे भर सकते है किंतु यही गड्ढा नही भर पाता। यदि यह गड्ढा (मन) भर गया तो फिर पृथ्वी का राजा बनकर क्या करना है ?"

सिकन्दर समझ गया। मन की तृष्णा कभी नही भरती।

कषाय अग्नि है

शास्त्रो मे 'कषाय' की स्थान-स्थान पर निंदा की गई है। उत्तराध्ययन सूत्र मे कषाय को अग्नि बताया है। अग्नि जहा उत्पन्न होती है पहले उसी स्थान को जलाती है, दिया सलाई जलती है तो पहले स्वय को ही जलाती है, वैसे ही 'कषाय' जिस आत्मा मे उत्पन्न होता है, पहले उसी आत्मा का पतन करता है, और आत्मगुणो को जला डालता है।

कषाय चंडाल है

कषाय को 'चडाल' भी कहा है। प्राचीन समय मे चडाल जाति सबसे निकृष्ट और नीच समझी जाती थी। चडाल के छू लेने पर लोग स्नान करते थे। कषाय भी सबसे निकृष्ट है। आत्मा को कषाय का स्पर्श होने पर वह भी अपवित्र हो जाती है। उसके क्षमा आदि सद्गुण मलिन पड जाते है।

कषाय-राक्षस है

कही-कही कषाय को राक्षस बताया गया है। राक्षस दीखने मे बडा डरावना होता है, निर्दय और क्रूर होता है, मनुष्यो का भक्षण करता है, वैसे ही कषाय का उदय होने पर आत्मा रौद्र रूप धारण

कर लेता है। तथा, लज्जा, क्षमा आदि गुण नष्ट हो जाते है। वह सत्य-शील आदि धर्म का नाश कर डालता है।

मन को शुद्ध करो

जैन धर्म—अनशन, तप आदि का उपदेश करता है, किंतु सिर्फ अनशन, तप आदि से शरीर को सुखा कर दुर्बल कर डालने की प्रशसा वह नही करता। उसका कहना है—जब तक वासना और अहकार दुर्बल नही हुए, तव तक शरीर को दुर्बल करने से सिद्धि प्राप्त नही हो सकती।

जैसे करेला—बार-बार धोने से, या सिर्फ धूप मे सुखाने से ही मीठा नही वनता, जवतक उसकी कटुता नही मिटाई जाती, वह खाने लायक नही बनता। करेला सूखने पर भी कड़वा ही रहता है, किंतु उसकी कटुता मिटा कर सुखाने पर वही स्वादिष्ट बन जाता है। वैसे ही शरीर को सुखाने की जरुरत नही, मन को शुद्ध करने की जरुरत है।

ज्ञान, क्रिया और अर्थ

शास्त्र पढ लेने से, उनके पाठ रट लेने से कोई ज्ञानी नही बन सकता, और दिन-रात कठोर क्रिया करते रहने से ही कोई चारित्र-वान नही बन सकता। क्रिया मे ज्ञान होना चाहिए, शास्त्र के पाठ मे शब्दो को नही, उसके अर्थ को समझना चाहिए तभी वास्तविक ज्ञान होता है, और तभी क्रिया सफल हो सकती है।

कच्छ की एक घटना प्रसिद्ध है—वहा कुछ श्रावक दोनो समय प्रति-क्रमण सुनने के लिए उपाश्रय मे एकत्र होते थे और एक भाई प्रति-क्रमण सुनाता। सयोग से जो भाई सध्या का प्रतिक्रमण सुनाता उसका नाम था 'देवसीभाई' और जो सुवह का प्रतिक्रमण सुनाता उसका नाम था 'रायसीभाई।' प्रतिक्रमण मे भी स्थान-स्थान पर

'देवसी' और 'रायसी' शब्दो का प्रयोग होता ही है। एकबार 'देवसी भाई' की जगह खेतसी भाई को प्रतिक्रमण सुनाने का प्रसग आया तो उन्होने 'देवसी पडिक्कमण' की जगह अपना नाम जोड़ दिया 'खेतसी पडिक्कमण ।"

एक समझदार श्रावक ने उसे समझाया—देवसी रायसी तुम्हारे नाम नही, किंतु दिवससम्बधी और रात्रिसम्बन्धी प्रतिक्रमण है। किंतु तोता रटतवाले को इसका ज्ञान कहा है ?

परिणामदर्शी

शास्त्रो में बताया है—पापकर्म करने से पहले उसके कटु परिणामो पर विचार कर लेना चाहिए। जो उसके कटुपरिणामो को पहले देख लेता है वह फिर पाप मे प्रवृत्त नही होता—

आयकदसी न करेइ पावं—आचाराग,

आतक—अर्थात् पाप के बुरे फल देखनेवाला पापकर्म से वचता रहता है ।

एक व्यक्ति ने अपने पुत्र से अन्तिम समय मे चार शिक्षाएँ दी—

१ जुआ खेलने का मन हो तो पहले जुआरी के घर जाकर उसे खाना खाते देख लेना।

२. मिठाई खाने का मन हो तो पहले हलवाई की दुकान पर जाकर उसे बनाते समय देख लेना।

३ वेश्या-गमन का विचार हो तो पहले प्रात काल उसका रूप देख लेना।

४ राज-पुरुषो से प्रेम बढाने का विचार हो तो, पहले उससे एकाध काम करवाके देख लेना।

पुत्र ने शिक्षा के अनुसार किया और चारो ही वातो से उसका मन हट गया।

वास्तव में बुराई ऊपर से सुन्दर लगती है, पर उसका असली रूप बहुत ही घिनौना होता है।

विष और विषय

विपय—काम-भोग की आकाक्षा, लालसा, विष से भी अधिक भयानक है। क्योकि विष तो खाने से ही मारता है, किंतु विषय केवल स्मरण करने मात्र से ही मन की पवित्रता को नष्ट कर डालते है। इसलिए विप से भी वढकर 'विषय' खतरनाक है।

सत्य का पारा

थर्मामीटर मे जब तक पारा रहता है, वह मनुष्य के शरीर का तापमान वताता रहता है। इसीप्रकार हमारे चितन मे जब तक सत्य का पारा रहता है, तबतक वह शास्त्र और ग्रथों की सही कसौटी करता रहता है।

हलका-भारी

प्रकृति का नियम है—भारी वस्तु नीचे की ओर आती है, हलकी वस्तु ऊपर जाती है। गेंद नीचे से ऊपर उछाला जाय तो लौटकर नीचे आजाता है, किंतु पानी की भाप हल्की होने से नीचे से ऊपर की ओर चली जाती है।

जीवन मे धर्म का भी यही क्रम है। जिस जीवन मे ममत्व, कपाय आदि का भारीपन रहता है, वह किसी शुभ प्रयत्न से ऊपर उठकर भी पुन. नीचे की ओर—अधोगति मे चला जाता है। किंतु जब आत्मा निर्ममत्व और निष्कषाय होकर हलका हो जाता है, तो फिर किसी भी दबाव मे रुके विना वह सीधा ऊर्ध्वगति को प्राप्त होता है।

ठहर जा !

तन सोया है, वैठा है, ऊघ रहा है, पर मन निरन्तर चल रहा है, दौड़ रहा है, एक क्षण भर भी विना रुके - हिंसा, द्वेष, भय, लोभ आदि की दौड मे सतत दौडा जा रहा है। वह जव तक नही रुकता

तब तक शाति नही मिलती। क्योकि बेतहाशा दौडनेवाले को शाति कहा ?

श्रमण गौतम से जब केशीश्रमण ने पूछा—यह मन दुष्ट घोडे की तरह दौड रहा है, तब तुम्हे शाति कैसे अनुभव होती होगी ?

गौतम ने उत्तर दिया – मैं ज्ञान की लगाम डालकर इसे अपने वश मे किये बैठा हू, इसीलिए मैं शात एव प्रसन्न हू।

ऐसा ही एक प्रश्न एकबार तथागत बुद्ध के सामने आया। तथागत चले आरहे थे, सामने खू खार डाकू अगुलिमाल खड़ा पुकार रहा है—'श्रमण ! ठहर जा !

बुद्ध हसकर बोले – मैं तो ठहरा हुआ हू, अब तू भी ठहर जा !

अगुलिमाल आश्चर्य के साथ सोचता है—यह जो चलता है, अपने को ठहरा हुआ कहता है, और मै एक जगह खडा हूँ उसे नही ठहरा हुआ कहता है। अगुलिमाल ने इसका अर्थ पूछा, तो बुद्ध बोले—मै सयम मे स्थित हू, मेरा मन सब प्राणियो के प्रति दया में ठहरा है, किंतु तेरा मन हिसा, द्वेप की दौड मे दौड रहा है, कब से भागा जा रहा है, कभी क्षण भर का विश्राम भी नही, अत. अब तू ठहर जा। अर्थात् अपने मन को ठहरा ले ! तन भले ही चलता रहे, पर मन को स्थिर करले।

तथागत के सकेत पर अगुलिमाल सचमुच ठहर गया, तन से ही क्या, मन से भी। और शाति प्राप्त करली उसने ![1]

बस, जब मन ठहर जाता है तो शाति स्वत ही प्राप्तहो जाती है।

मन की खोज !

मानव का स्वभाव है, जब वह उदासीन होता है तो एकात चाहता है, जब विरक्त होता है तो वन की ओर चला जाता है। धीरे-धीरे जब उदासीनता टूट जाती है, विरक्ति के सस्कार कमजोर

---

१. मज्झिमनिकाय, अगुलिमाल सुत्तन्त-२।४।६

पड़ जाते है तव एकात में भी भीड जमा करने लगता है, वन मे भी भवन की कल्पना करने लग जाता है। इसलिए भारतोय विचारको ने, सतो ने कहा है—तू वैरागी बनता है तो वन में नही, किंतु अपने मन मे गहरा चला जा। वही तुझे अनन्त शाति मिलेगी।

नानकसाहव ने कहा है—

घट ही खोजहु भाई!
काहे रे वन खोजन जाई।

घट को, मन को ही खोज। वन में खोजने को क्यो व्यर्थ जा रहा है!

गुरु का गौरव

सिखधर्म में गुरु का वहुत गौरव गाया गया है—गुरु के लिए कहा है—

गुरु मेरी पूजा, गुरु गोविन्दु।

वास्तव में गुरु मार्ग द्रष्टा है, और चलनेवाले के लिए मार्गद्रष्टा ही सब कुछ है।

इसीलिए सत तुलसीदासजी ने कहा है—**राम ते अधिक राम का दासा**—राम के सेवक राम से भी अधिक है! क्योंकि सेवक ही स्वामी का सच्चा प्रतीक होता है। भगवान का रूप गुरु मे झलकता है।

जैसा संग वैसा रंग

स्वातिनक्षत्र मे आकाश से जल की बूदे गिरी। एक बूद मछली के मुह में गिरी—वह मोती बन गई। एक बूद सर्प के मुह मे गिरी—वह जहर बनगई। एक बूद फूल पर गिरी तो सुन्दर आभा लिए चमक उठी, एक बूद ऊकरडी पर गिरी तो दमघोटू गदी हवा उठने लगी। एक बूद सागर मे गिरी तो मीठा पानी भी नमक वन गया। सच है—जैसा संग होता है वैसा ही रग आता है।

तेरे हाथ

मनुष्य कहता है—फल देना भगवान की इच्छा है। किंतु सच

तो यह है कि जिसके हाथ मे बीज बोने का अधिकार है, उसे इच्छित फल पाने का भी अधिकार है ।

जो किसान अच्छा बीज बोयेगा उसे अवश्य ही अच्छा फल मिलेगा । बीज बोने का अधिकार किसान का है, तो फल प्राप्त करने के अधिकार से भी उसे कौन वचित कर सकता है ?

मनुष्य यदि सत्कर्म के शुभ बीज बोता है, तो उसके शुभ फल प्राप्त करने से भी उसे कोई वचित नही रख सकता ।

भगवान महावीर ने कहा है—बीज बोना तेरे हाथ मे है, तो फल पाना भी तेरे हाथ मे है ।

किराये का मकान

किराये के मकान को यद्यपि कोई गदा रखना नही चाहता, किंतु बहुत अधिक टीप-टाप भी करवाना पसन्द नही करता, क्योकि आखिर तो वह घर पराया है, और छोड़ना है ।

ज्ञानी शरीर को भी किराये का घर समझता है, वह इसकी उचित सार-सभार जरूर करता है, किंतु उसकी बहुत अधिक चिता या साज-शृगार नही करता, क्योकि वह जानता है आखिर इसे एक दिन छोडना है ।

अपनी निंदा करिए

एक सज्जन को यह शिकायत है, कि वे बहुत गुणी है, विद्वान है, फिर भी लोग उनकी प्रशसा नही करते ?

एकबार उन्होने अपनी शिकायत मुझ से की थी—'सचमुच लोगो मे गुणज्ञता नही रही ! मेरे जैसा गुणी कोई विरला ही मिलेगा, पर देखते हो, किसी के मुह से प्रशंसा के दो शब्द भी कभी नही निकलते । सब के मुह पर जैसे ताले लगे रहते है ।"

मैंने कहा—"कभी-कभी रोग का विरोधी उपचार करना चाहिए । आप अपनी प्रशसा नही, किंतु निंदा प्रारम्भ कीजिए और

देखिए लोग आपके मुंह पर ही नही, पीठ पीछे भी आपकी प्रशसा करेंगे !"

मेरा अनुभव है कि अपनी प्रशसा सुनने के लिए कभी भी अपने मुंह से अपनी प्रशसा नही करनी चाहिए। लोग विपरीत गति से चलते है, जो अपने को बुरा कहेगा, लोग उसे भला बतायेंगे, अपने को छोटा बतानेवाले को लोग बड़ा बताते है।

दुर्विचारो के दाग

मन में यदि एक बार भी दुर्विचार आजाते है तो वे मक्खी की तरह हृदय-पट पर अपने गदे दाग तो छोड़कर ही जाते है। अत हृदय-पट को बार-बार सभालते रहो ओर दुर्विचारो के दाग को तुरंत धोकर साफ करते जाओ।

सही उपयोग

वस्तु का सही उपयोग करना—एक कला है। जिस दवा को शरीर पर लगाने से आराम मिलता है, उसे यदि पेट में खा लिया जाय तो आराम के स्थान पर प्राणघातक बन सकती है।

सही उपयोग करने पर मिट्टी और राख भी अमृत का काम देती है, किंतु गलत उपयोग करने पर सुगन्धित इत्र और मधुर मिष्टान्न भी जहर बन जाते है।

मुंह मे गया शीतल जल प्राणदायक है, किंतु कान में गया जल पीड़ादायक हो जाता है। तन पर लगा इत्र सुवास से मन को प्रफुल्ल कर देता है, किंतु यदि वह मुंह में चला जाय तो मुंह कडवा और कषैला हो जाता है।

आत्मकल्याण का इच्छुक साधक वीतरागता की साधना करता है, किंतु राजसिंहासन पर बैठकर कोई वीतराग बनने का नाटक रचे तो ? इसीलिए आचार्य ने कहा है—

शमोहि भूषणं यतीना न भूपतीनां।

—समता साधुओ का भूषण है, राजाओ का नही। वस्तु के सही ढग एव सही उपयोग का ज्ञान करना ही द्रव्य-क्षेत्र-काल का विशेषज्ञ बनना है।

प्रतीति

छलनी मे पानी नही भरा जा सकता, किंतु यदि पानी भरे वर्तन मे उसे रख दिया जाय तो वह भरी हुई प्रतीत होगी, इसी प्रकार मन की तृष्णा है। वह कभी पूरी नही हो सकती, किंतु जब तक विपयो के बीच मन रहता है तो लगता है वह भर गई है, किंतु ज्यो छलनी को हटाने पर वह खाली की खाली रहती है, त्यो ही तृष्णा विपय-सामग्री के दूर हटने पर खाली ही रहती है। मन की यह भ्रान्त प्रतीति ही मनुष्य को धोखा देती रहती है।

सच्चा भक्त

सच्चा भक्त, पतगे के समान है। पतगा दीपक की लौ को जलते देखकर पीछे नही हटता, प्राणो को दांव पर लगाकर भी वह लौ का चुम्बन कर लेने को आकुल हो जाता है, और आखिर वही समर्पित हो जाता है।

सच्चे भक्त की भी यही स्थिति है। प्रभु भक्ति के पथ पर बढता हुआ कष्टो और विपत्तियो से घबराकर वह कभी वापस नही लौटता, किंतु प्राणो की बाजी लगाकर भी वह प्रभु दर्शन करने को उतावला हो जाता है और उसी मे स्वय का विलय कर देता है।

विपयासक्ति

सर्प, पतग, भ्रमर, मत्स्य और गज ये शब्द, रूप, गध, रस एव स्पर्श-इन्द्रियो के वशीभूत होकर अपना अनिष्ट कर डालते है, और मृत्यु का भी आलिगन कर लेते हैं। क्योकि इन मे विपयासक्ति होती है, विचार शक्ति नही।

किंतु आश्चर्य तो यह है कि मानव में विचारशक्ति होते हुए भी, इष्ट-अनिष्ट को समझने की बुद्धि होते हुए भी वह इन्द्रिय-विषयो के अधीन हुआ स्वय के हाथो ही अपना विनाश कर डालता है।

लगता है, मानवजीवन पशुजीवन से भी हीन और हीनतर होता जा रहा है।

ज्ञानी और अज्ञानी का पतन

अंधा व्यक्ति चलते-चलते यदि गड्ढे मे गिर जाता है, तो लोग उसके प्रति सहानुभूति दिखाते है और निकालने का प्रयत्न भी करते है, किन्तु जिसके पास दो आँखे हैं, वह भी यदि गिर जाता है तो लोग उसका उपहास करते है और उपेक्षा करके चले जाते है।

ज्ञानी और अज्ञानी के पतन मे भी यही अन्तर है। अज्ञानी दया का पात्र है, उसके पतन पर मनुष्य को तरस आता है, किन्तु जो ज्ञानी है, शास्त्र ज्ञान का दम भरता है, वह भी यदि पतित जीवन विताने लगता है तो लोग उसका उपहास करके उपेक्षा दिखाते रहते है।

पकड़

ज्ञानी के ग्रहण मे विवेक रहता है, उसकी पकड मे भी अनाग्रह रहता है, अत· जैसे ताले मे चावी लगते ही वह खुल जाता है, वैसे ही भूल अनुभव होते ही ज्ञानी अपनी पकड को शिथिल कर देता है, गृहीत को भूल ज्ञात होने पर छोडने मे भी उसे सकोच नही होता।

अज्ञानी मनुष्य की पकड मकोडे जैसी है, वह जीते जी छूटती नही, तन के टुकडे हो जाने पर भी पकड ढीली नही करता, वैसे ही अज्ञानी भयकर कष्ट उठाकर भी आग्रह नही छोडता।

ममता का पर्दा

आँख पर जरा-सा पर्दा पड जाय तो मनुष्य कुछ भी नही देख सकता। वडे वडे पहाड, सूर्य समुद्र भी छोटे से पर्दे की ओट मे छुप जाते है।

इसीप्रकार यदि मन पर ममता का छोटा-सा पर्दा गिर जाता है तो विराट् भगवान और अखडचैतन्य स्वरूप आत्मा के भी दर्शन नही हो सकते।

धन साधन है

अर्थ—(धन) से अनर्थ भी पैदा हो सकते है, और परमार्थ भी सध सकता है।

यदि - अन्याय, अहकार, वासना और फैशन आदि में अर्थ का दुरुपयोग किया जाता है तो वह अर्थ—अनर्थकारक है, उसके लिए 'अर्थमनर्थं भावय नित्यं और 'धण दुक्खविवड्ढण' धन दुख बढानेवाला है—यह कहा गया है। यदि धन से जनसेवा, दान, और ज्ञान की वृद्धि की जाती हो तो वही धन—अर्थ 'अर्थं सर्वार्थसाधकम्' सब अर्थो का साधक कहा जा सकता है।

इसीलिए कहा गया है—

धन साधन है,
आराधन और
विराधन का,
योग, भोग
और
रोग का,
भुक्ति, भक्ति
और
मुक्ति का .

उपदेशप्रूफ श्रोता

जैसे वाटर प्रूफ वस्तु पर कितना ही पानी डालो, उस पर कोई असर नही होता, आजकल के श्रोतागण भी वैसे ही उपदेशप्रूफ

हो गये है—रात दिन उपदेश सुनाने पर भी उनके हृदय पर उसका कोई असर नही होता है।

क्या दोष है ?

सूर्य का उज्ज्वल प्रकाश धरती को आलोकित कर रहा हो, उस समय भी यदि उल्लू और चमगादड़ को कुछ दिखाई न दे, वे अंधेरी ठोकरे खाते फिरे तो इसमे क्या सूर्य का दोष है ?

यदि भारतवर्ष में सैकडों हजारो धर्मग्रथ और लाखो साधु संतों के होते हुए भी मानव, धर्म और न्याय के पथ मे भटक रहा है तो इसमे सतो और ग्रथो का क्या दोप है ?

बुद्धि और श्रद्धा

कुछ लोग धर्म पर बहस कर सकते हैं, भाषण दे सकते है, सुन्दर लिख सकते है, किंतु उस पर आचरण नही कर सकते। क्योकि वे केवल बुद्धिवादी होते है। बुद्धि का व्यायाम करना जानते हैं, हृदय को पावन करना नही।

कुछ लोग गूगे के गुड़ की तरह धर्म का रसास्वाद कर लेते है, ईश्वरभक्ति और संतदर्शन करके आनन्द विभोर हो उठते है, दान एव परोपकार करके हृदय को प्रफुल्ल कर लेते है, किंतु उस धर्म का वर्णन नही कर सकते। वे केवल श्रद्धावादी होते है, श्रद्धा हृदय को रस-विभोर कर देती है, किन्तु बुद्धि मे चचलता नही आने देती है।

श्रद्धा में स्थिरता है, आनन्द है, रसानुभूति है।

बुद्धि में चंचलता है, उलझन है और कर्कशता है।

जुगनू के साथी

जुगनू के शरीर मे प्रकाश-तत्व रहता है, अधकार मे चमक-चमक कर वह लोगो को अपनी प्रकाश किरणे दिखाता है, किंतु क्या वह स्वंय भी अपना प्रकाश देख सकता है ? नही !

जिनका ज्ञान, उपदेश और अनुभव सिर्फ दूसरो को मार्ग दिखाने

चिंता में झूल रहा है कि वह एकबार भी हाथ लग जाये तो सब मन चाहे पूरे करलू ! कल्पवृक्ष की कामना मे आकुल हो रहा है कि कही वह मिल जाय तो बस, सब कामनाए सफल करलू ! कामधेनु की धुन मे पागल हो रहा है कि एक बार भी वह प्राप्त हो जाय तो सब दारिद्र्य धो डालू ।

पर उसे यह कहा पता है कि पारस पत्थर, चितामणि, कल्पवृक्ष कामधेनु और चित्रावेल—ससार में कही है तो तेरे पास ही है, तेरे घट के पट मे ही वे सब छुपे है, बस, ज्ञान की आख से उन्हे पहचान भरले, तेरे सब मन चाहे पूरें हो जायेगे ।

अलग-अलग सिक्के

प्रत्येक देश के सिक्के अलग-अलग है—जैसे किसी का डालर, किसी का स्टर्लिग, किसी का रुपया । एक देश का सिक्का दूसरे देश में नही चल सकता ।

इसीप्रकार जोवन के भौतिक एव आध्यात्मिक क्षेत्र के सिक्के भी अलग-अलग है । हास्य, क्रीडा, मनोरजन, भोग, ऐश्वर्य—ये भौतिक देश के सिक्के है, भौतिक देश मे इनका मूल्य है, किंतु, आध्यात्मिक देश मे इन सिक्को से काम नही चल सकता ।

आध्यात्मिक जगत की यात्रा कर आनन्द उठाना हो तो त्याग, समता, निस्पृहता, उदासीनता और आत्म-सयम के सिक्के लेकर ही चलना होगा ।

चौकन्ने-दुकन्ने भी नहीं !

मैं देखता हूं घर मे गृहणिया और दुकान मे व्यापारी अपने-अपने काम मे कितने चौकन्ने है ?

गृहणिया—घर मे गेहू आदि धान्य को फटकती है, बीनती है कि कही उनके साथ ककर मिट्टी आदि न रह जाय ! धनिया, जीरा

आदि प्रत्येक चीज को साफ करके उनमे मिली खराब चीजे अलग निकाल देती है।

व्यापारी सायकाल अपनी रोकड़-वही लेकर पैसे-पैसे का हिसाव जाचता है, नोट और सिक्कों को परखता है। यदि कही हिसाव की भूल रही हो, खोटा सिक्का या नोट आ गया हो, तो तुरत उसे सुधारने की कोशिश करता है, वदलने की कोशिश करता है।

परतु आश्चर्य होता है, व्यवहार मे इतना चौकन्ना-गृहस्थ धर्म क्षेत्र में चौकन्ना तो क्या, दुकन्ना भी नही है। वह यहाँ आकर विल्कुल लापरवाह हो जाता है। अपने जीवन मे क्या-क्या वुराइया घुस रही है, कौन-कौन से दुर्गुण उसके सद्गुणों के साथ मिल रहे हैं—इसकी विल्कुल भी छान-वीन नही करता। जैसे अंधा अंधे के पीछे चलता है, उसी भांति वस आख मीचे चला जा रहा है।

न गृही को फुर्सत है कि अपने जीवन की रोकड मिलाये, सद्गुणो के सिक्को की परख करे। और न गृहिणी को अवकाश है कि वह सद्गुणो के धान्य मे मिले ककर-मिट्टी को वीन-फटक कर अलग करने की चेष्टा करे?

होशियार गृहस्थ की कैसी है यह लापरवाही!!

रस से परवश

समुद्र के किनारे कभी कभी देखता हू, कई आदमी आटे की गोलियां बनाकर पानी में डालते है, और उन्हे खाने मछलियां दौड़-दौड कर लपक आती है। पहले तो मै समझता था ये भी कोई दयालु है, जैसे कवूतरो को दाना और चीटियो को आटा डालते हैं वैसे ही मछलियो की दया के लिए, ये उन्हे खिलाने पिलाने के लिए यह सव पुण्य कर रहे है।

किंतु एक दिन सचमुच मेरी आख खुली और खुली ही रह गई—यह तो धोखा है, षड्यत्र है। ये कोई धर्मात्मा नही, किंतु मछेरे है।

के लिए ही होता है, स्वय उस ज्ञान का अनुभव नही करते और उस उपदेश पर आचरण नही करते, वे जुगनू के साथी हैं।

जुगनू अपने प्रकाश का स्वय अनुभव नही कर सकता।

आचारशून्य ज्ञानी अपने ज्ञान का स्वय लाभ नही उठा सकता!

बाहर-भीतर

जल से बाहर निकल कर मछली तडपने लगती है, और जल के भीतर गिर कर मनुष्य छटपटाने लगता है।

वैसे ही भोगप्रिय मनुष्य सतो के सहवास मे आकर ऊबने लगता है। धर्मकथा सुनने मे ऊघ आने लगती है और जल्दी ही वहा से छूट भागने की चेष्टा करता है। और त्याग-प्रिय निरासक्त मनुष्य ससार के झझटो मे फसकर उनसे बेचैन हो उठता है।

भोगी मछली की तरह ससार समुद्र के भीतर आनन्द मानता है। त्यागी मनुष्य की तरह उससे बाहर निकल कर सुख की सास लेता है।

धर्ममूलक प्रवृत्ति

जिस प्रकार एक का अक लिख कर उसके आगे शून्य लिखे जाते है, तो उनसे एक अक का मूल्य बढता है और शून्य भी सार्थक होते है।

यदि इसके विपरीत पहले शून्य लिखकर फिर अक लिखा जाय तो उससे शून्य का तो कोई महत्व ही नही होता, किंतु एक का भी (दशमलवप्रणाली के अनुसार) दस गुना एव सौगुना मूल्य गिरता चला जाता है।

इसीप्रकार जिस प्रवृत्ति के ऊपर धर्म का, परोपकार एव परमार्थ का अक लगता है तो उस प्रवृत्ति का मूल्य सदा बढता ही जाता है। किंतु यदि उस प्रवृत्ति के प्रारभ मे स्वार्थ, अन्याय आदि के बिंदु लग गये तो उस प्रवृत्ति का मूल्य और भी कम हो जायेगा और वह शून्य के बराबर हो जायेगी।

भय भाग जाता है

अज्ञानी मनुष्य ज्ञानी की सगति मे जाने से भय खाता है, भोगी वैरागियो की संगति करने से कतराता है, उसके मन में अनेक सशय और भय छाये रहते है कि पता नही वहां क्या होगा ? ससार ही छूट जायेगा या खाना-पीना ही छुडवायेगे। पर, जो एक वार चला जाता है, और उनका वरदान स्वरूप आशीर्वाद प्राप्त कर लेता है, उसका भय कोसो दूर भाग जाता है और वह आनन्दविभोर हो उठता है।

सन् १९५३ मे श्री जवाहरलाल नेहरु महाराष्ट्र की दुष्काल स्थिति का अवलोकन करने आये तो वे उस किले में गये जहा १९४२ से ४५ तक वे वही जेल मे रहे थे। वहा पहुचने पर नेहरू जी को याद आया कि इस जेल मे एक राघु नाम का नौकर था जो हम लोगो की बहुत सेवा किया करता था। नेहरू जी ने उसके लिए पूछा। वह दूसरे स्थान पर था। अधिकारियो ने तुरन्त पुलिस को भेज कर उसे वुलाया। राघु भय से काप उठा—सोचने लगा, पता नही, क्या वात होगई, कैसी सजा मिलेगी ? वह विचारा पसीना पसीना हो गया। जव नेहरू जी के सामने वह उपस्थित हुआ तो भय से काप रहा था। नेहरू जी ने राघु की पीठ थप थपाई, उसे सेवा के लिए धन्यवाद दिया और अच्छा पुरस्कार देकर अधिकारियो को उसकी तरक्की कर देने के लिए कहा। राघु का भय भाग गया, उसके अधकारमय जीवन मे जैसे नया प्रकाश आ गया।

अज्ञानी जन भी ज्ञानी के निकट आते पहले इसीप्रकार कतराते है, किंतु ज्ञान का प्रकाश पा लेने के वाद वे ही अभय हो जाते है।

पहचान भर ले

मनुष्य पारस पत्थर की कल्पना मे भटकता है, कि वह मिल जाये तो सब लोहा सोना बना लू। चितामणि की

खाने का लोभ दिखाकर मछलियो को अपनी ओर खीचते है, और फिर जाल डालकर अचानक उन निरीह मछलियो को पकड कर ले जाते है।

'हाय ! यह ससार थोडे से स्वाद के लिए वर्बाद हो रहा है, रस के लिए विवश हुआ परवश हो रहा है। मछली आटे के लालच मे बेभान हुई फस जाती है और आदमी जीभ के रस मे फसा—कितना ढोग और अन्याय रच रहा है ?'

नीरो जैसा क्रूर

जब रोम नगर आग की लपटो मे जल रहा था तो वहा का वादशाह नीरो मस्ती मे वैठा वासुरी की तान पर झूम रहा था। आग की ज्वालाएँ देखकर उसकी मस्ती और बढ गई और वह प्रसन्न होकर नाचने लगा।

इतिहासकरो ने नीरो को क्रूर और निर्दयी घोपित कर दिया है।

सत कहते है—यह तेरा ससार मृत्यु की लपटो मे प्रतिक्षण जल रहा हे। **'अलित्ता पलित्ते णं भते !'**—यहाँ जन्म, जरा, रोग, मृत्यु की ज्वालाएँ धधक रही है, और तू इस शरीर को सजा सवार रहा है, भोग विलास की मस्ती मे डूब रहा है, ऐश्वर्य के आनन्द मे थिरक रहा है -फिर तू भी नीरो जैसा क्रूर, निर्दयी और मूढ नहीं है क्या ?

तृप्ति नहीं !

रोम का वादशाह नीरो वहुत अधिक रसलोलुपी था। विविध मिष्टान्नो और मसालो का स्वाद लेने के लिए वह दिन मे कई वार खाता और फिर दवा लेकर वमन कर देता। पेट खाली होने पर फिर खाता और फिर वमन कर देता—इस प्रकार वह तरह-तरह के स्वाद चखने की चेष्टा करता, किंतु फिर भी उसकी जीभ तृप्त नही हुई। मरते दम तक वह अतृप्ति की प्यास से छटपटाता रहा।

नीरो की इस घटना पर पुराने सतो की एक उक्ति मुझे याद आ जाती है—वे कहते थे—"सुमेरु जितनी मिश्री खाली, फिर भी जीभ फीकी रही" वास्तव मे भोजन से कभी भी रसना तृप्त नही हो सकती। भोजन की आसक्ति छोड़ने से ही तृप्ति का अनुभव हो सकता है।

अनासक्त सत रूखी रोटी खाकर भी तृप्त हो जाते हैं। आसक्त मनुष्य बत्तीस व्यजन खाकर भी अतृप्ति अनुभव करता है। रसना का यही रूप है, वह तो 'रस-ना' है, उसमे रस नही, रस मन मे है। मन के रस से ही मनुष्य तृप्ति का अनुभव कर सकता है।

सांप और पाप

मेरे गुरुदेव कहा करते है—'साप' से भी 'पाप' भयकर है। मनुष्य साप से डरता है कि कही काट न ले, पर पाप से उससे भी अधिक डरना चाहिए।

साप का काटा हुआ बच भी सकता है, न बचे तब भी एक ही बार मरता है, पर पाप का काटा हुआ तो बचता ही नही, जन्म-जन्म में उसे मरना पड़ता है।

सांप-साप को नही खा सकता, किन्तु पाप तो अपने आप को ही खा जाता है। और कई जन्म तक उसका जहर नही उतरता।

इसलिए साप से भी ज्यादा पाप का डर रखो, पाप से बचो।

भगवान महावीर के शब्दो में—'सिहो जहा खुड्डमिगा चरंता'—छोटे-छोटे मृगछौने ज्यो सिह से भय खाकर डरते रहते है, उससे दूर-दूर रहते है, वैसे ही कल्याणकांक्षी पापो से दूर रहे।

महानता का मार्ग

महान बनने के लिए किसी को मिटाने की जरूरत नही, अपने को बढाने की जरूरत है। अपने आप का विकास ही मनुष्य को महानता के पथ पर ले जाता है।

वट—नन्हे से बीज से पैदा होता है, किंतु अपना विकास करता-करता एक दिन महावृक्ष का रूप धारण कर लेता है।

जल की एक बूंद आकाश से गिरती है; किंतु अपने साथ हजारो लाखो असख्य जल बूंदो को मिलाती हुई वह नदी का रूप लेती है और एक दिन महासमुद्र का आकार भी धारण कर लेती है।

यही है महानता का मार्ग—अपनी शक्तियो का विकास करते जाना, विना रुके बढते जाना और दूसरे साथियो को साथ मे लेकर शक्तिसचय करते जाना।

भावना

भावना मनुष्य की सबसे कीमती निधि है, चतुर व्यापारी की तरह इस धन का उपयोग बडी सतर्कता के साथ करना चाहिए।

भावना—गीली मिट्टी का एक लोथड़ा है, संयम एव सतर्कता (विवेक) के हाथो से जोवन को एक महान्व्यक्तित्व का आकार दिया जा सकता है।

धर्म का क्रम

प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक सुकरात का कथन है—

—"जो अपने को प्यार करता है, वह अपने वच्चों को भो प्यार करता है, जो अपने वच्चो को प्यार करता है, वह दूसरो के बच्चो को भी प्यार करेगा—बस यही धर्म का सरल क्रम है।"

वास्तव मे जिसके हृदय मे स्नेह होगा, सरलता होगी, वह उसे छुपाकर नही रखेगा, ससार को भी अपने निर्मल स्नेह, एव सहज सरलता का दान करेगा—और यही उसकी धर्माराधना होगो।

नाव मे जल

साधक देह धारी है, अत ससार उसका आश्रय है। गृहस्थ घर परिवार, राज्य के आधार से वह अपनी साधना करता है, पर इनका

आश्रय लेकर भी वह उन पर अवलंबित न रहे—अर्थात् उन पर आसक्ति न रखे। देह से भले ही वह ससारी है, पर मन उसका ससारी न रहे। विकारो के बीच रहकर भी मन मे विकार न आने देना—यही तो साधना है।

मक्खन दही से निकलता है, और बाद में भी छाछ (मट्ठे) मे रहता है, पर यदि मक्खन मे मट्ठा रह गया तो ?

मट्ठे मे मक्खन रहना—उसकी रक्षा है, और मक्खन में मट्ठा रहना—विनाश है।

रामकृष्ण परमहस ने इसी बात को यो कहा है—"नाव जल मे रहे तो कुछ हर्ज नही, परन्तु नाव मे जल नही रहना चाहिए। इसी प्रकार साधक भले ही ससार में रहे, पर उसके मन मे ससार नही रहना चाहिए।"

कमल कीचड़ में पैदा होकर भी निर्मल रहता है, पर यदि कमल पर कीचड छा गया तो ? वह नष्ट हो जायेगा।" यही हाल साधक और ससार का है।

स्थितप्रज्ञ का हृदय

कुछ दिन पूर्व एक समाचार पत्र में गोदरेज की आलमारी का एक विज्ञापन पढा था—एक सेठ के घर मे चोर घुस आये। सेठानी ने घबरा कर कहा—"चोर तिजोरी को खोलने का प्रयास कर रहे है।" सेठ ने हस कर कहा—"मुझे सब पता है, पर चिंता की क्या जरूरत है, क्योकि तिजोरी फायरप्रूफ, वाटर प्रूफ, एअर प्रूफ और थीफ प्रूफ है।' उस पर अग्नि और जल का कोई प्रभाव नही पडता, हवा पास नही हो सकती और चोर उसे खोल नही सकते।"

मैं कुछ सोचता रहा, विचारो मे गहरा उतरा तो लगा कि जिसने अपनी आत्मा को पहचान लिया है, आत्मज्योति के दर्शन कर जो स्थितप्रज्ञ हो गया है, उसका हृदय भी सचमुच गोदरेज की आल-

मारी जैसा ही हो जाता है। उस स्थितप्रज्ञ आत्मा को कषायो की अग्नि कभी जला नही सकती, विकारो का जल कभी उसे भिगो नही सकता, लोभ की हवा उसमे प्रवेश नही कर सकती और दुर्गुण रूप चोर कभी उसे खोल नही सकते। आत्मदर्शन के सिवाय अन्य कोई भी चाबी उस हृदय द्वार पर लग ही नही सकती।

पिंजरे का सिह

मैने एकदिन एक सरकस कपनी के सिह को देखा। सोचने लगा—जिस सिंह की दहाड से पर्वत मालाएँ काप उठती थी वह आज एक पिजरे मे बद है, और दो बैल उस पिंजरे को खीच रहे है। सिह के पीछे कुत्ते भौक रहे है, बच्चे हा-हा ही-हू कर रहे है—पर विचारा सिंह चुपचाप सब कुछ सहे जा रहा है।

मै जरा चितन मे गहरा उतरा, तो लगा—अपने आत्मसिह की भी यही दशा हो रही है। जिस आत्मा की अनन्त शक्तियो के समक्ष ससार की समस्त शक्तिया पानी भरती है, वह आत्मा आज तुच्छातितुच्छ पुद्गलो के समक्ष दास बना हुआ है। भौतिक-शक्तिया उसका मजाक कर रही है और वह पिजरे के सिह की तरह चुपचाप बैठा देख रहा है।

भावना की खुराक

पाप और पुण्य वट के बीज की तरह प्रारभ मे अति लघु होते है, किंतु भावना की खुराक पाकर धीरे-धीरे महावृक्ष का रूप धारण कर लेते है।

बाईबिल शरीर पर नहीं, जीवन मे लिखो!

भारत मे जिस प्रकार लोग अपना नाम, या राम-राम हाथो पर खुदवाते है, उसी प्रकार पश्चिम के कुछ देशो मे लोग अपने शरीर

पर वाइविल खुदवाते है। कई व्यक्तियो ने अपने पूरे शरीर पर वाइ-
विल खुदवा रखी है।

पर, क्या वाइबिल को शरीर पर खुदवाने से ही वह जीवन में उतर जाती है? कोई भी धर्मशास्त्र, चाहे डायरी में लिखो, या शरीर पर लिखवालो, जब तक वह मन पर नही लिखा जाता तव तक उससे भला होनेवाला नही है।

कुछ व्यक्ति सोने के अक्षरो में पत्थरो पर या ताम्रपत्रो पर भी शास्त्र लिखवाते है, पर उनसे शास्त्र अमर नही होते, शास्त्र वही अमर रहेगा– जो जन-जन के जीवन मे लिखा जायेगा।

मानवजीवन की शोभा

वर्तमान संसार की पर्वतमालाओ मे हिमालय सवसे ऊचा और विशाल पर्वत माना जाता है। हिमालय की चोटियों में भी एवरेष्ट —सवसे ऊँची और अजेय चोटी मानी जाती थी। उसकी ऊचाई समुद्र की सतह से २९००२ फुट ऊची है। सन् १९५३ में तेनसिंह ने उस पर भी विजयध्वज फहरा दिया और ससार मे मानव के साहस का नया कीर्तिमान स्थापित कर दिया।

ससार की समस्त जीवयोनियो मे मानव भव का शिखर सबसे ऊचा माना गया है, उसमे भी धर्मयुक्त मानव जीवन की चोटी सबसे ऊँची है। जो मानव उस चोटी पर पहुच जाता है उसकी कीर्ति न सिर्फ इस मानवलोक को, किंतु देवताओ के दिव्यलोक को भी स्पर्श करने लगती है। धर्मयुक्त मानवजीवन की चोटी का आरोही वास्तव मे मानव जाति का अलकरण है, शोभा है।

पतंगा और साधक

दीपक की जलती हुई लौ को देखकर जो पतगा भय खाकर वापस लोट जाता है, वह पतगा नही हो सकता!

कष्टो की धधकती ज्वालाओ को देखकर जो साधक डर कर पैरो को पीछे हटा लेता है, वह साधक नही हो सकता ।

पतगा दीपक पर प्राण न्योछावर कर देने मे ही आनन्द का अनुभव करता है । साधक अपने पथ पर वलिदान हो जाने मे ही आनन्द मानता है ।

धर्म-शून्य राजनीति

भारत के एक प्रतापी सम्राट चद्रगुप्त ने एकवार एक स्वप्न देखा —कल्पवृक्ष की शाखा टूट गई है ।

आचार्य भद्रवाहु ने इसका फलित सूचित किया—भविष्य में राजाओ के जीवन मे से धर्मरूपी कल्पवृक्ष की शाखा टूट जायेगी । राजाओ का जीवन जो अव तक धर्ममय होता था, अव केवल भोग और छलमय ही रहेगा ।

आज के सन्दर्भ मे चन्द्रगुप्त का यह स्वप्न साक्षात् सच हो रहा है । आज के युग मे धर्ममय जीवन जीनेवाला राज कर ही नही सकता । आज राजा—शासक वही वन सकता है—जो धर्म और ईमानदारी को सवसे पहले छोडेगा । आज की राजनीति भी धर्म-निरपेक्ष—या धर्मशून्य हो गई है ।

विरक्तहृदय को;

लाखो मन सूखी घास को जैसे एक छोटी-सी चिनगारी भस्म कर सकती है, वर्षो के गहन अधकार को जैसे सूर्य की एक किरण नष्ट कर सकती है,वैसे ही शिक्षा एव वैराग्य का एक ही वचन विषयो से उदासीन हृदय के जन्म-जन्म के अज्ञान अधकार को दूर कर ज्ञान का आलोक जगमगा देता है ।

विषयो का आकर्षण

चुम्वक के पास में यदि लोहा और सोना-चादी रख दिया जाय

तो वह लोहे को ही अपनी ओर खीच सकेगा, सोने-चादी को नही।

भौतिक पदार्थो का आकर्षण उसी आत्मा को अपनी ओर खीच सकता है जो लोहे के तुल्य अति सामान्य स्तर की है। विवेक एव आत्मज्ञान के उच्च स्तर पर पहुची हुई आत्मा को विषयो का चुम्बक नही खीच सकता।

विवेकवान आत्मा

स्टोव मे यदि पानी भरकर कोई उसे जलाना चाहे तो क्या वह प्रज्वलित हो सकेगा? नही। हा, यदि उसमे मिट्टी का तेल (केरोशिन) होगा तो एक ही वार में वह प्रज्वलित हो उठेगा।

इसीप्रकार जिस आत्मा में विवेक नही है, उसे शास्त्रो का चाहे जितना उपदेश सुनाया जाय, उसमें ज्ञान की ज्योति नही जल सकती। किंतु विवेकवान आत्मा शास्त्र के एक वचन से ही प्रबुद्ध हो उठता है।

मृत्यु से डर

कहते हैं—प्राचीन समय मे एक राजा ने अपने मुकुट मे ये शब्द अङ्कित करवाये थे—

"मृत्यु से डर! न्याय कर!"

राजा जब भी अपने सिहासन पर वैठता तो ठीक सामने के दर्पण मे उसके मुकुट मे लिखे शब्द प्रतिविम्बित होते रहते और राजा बार-वार उन्हे पढकर अपने कर्तव्य मे सचेतन रहता।

आज हमारे मन-मुकुट मे भी ये शब्द अकित हो जाने चाहिए, और प्रत्येक क्षण, प्रत्येक कार्यवेला मे इन्हे पढते रहना चाहिए।

धर्म शरीरां नीपजै!

एक पुरानी कहावत है—

धर्म शरीरां निपजै, जो कुछ कीन्हा जाय।

—धर्म तो अपने शरीर से ही हो सकता है, दूसरे का किया हुआ धर्म अपना भला नही करेगा ।

एक राजा ने एक सन्यासी को बुलाया और कहा—"मुझे राज-काज मे अवकाश नही मिलता है अत आप मेरी तर्फ से प्रभु की प्राथना किया करिए ।"

सन्यासी ने कहा—"महाराज ! ठीक है ! मै आपके लिए प्रार्थना किया करूगा और आप मेरे लिए खाना खा लिया कीजिए !"

राजा ने हस कर कहा—'मेरे खाने से आपका पेट कैसे भरेगा ?'

सन्यासी ने गभीर होकर उत्तर दिया—जैसे मेरी प्रार्थना से आपका कल्याण होगा ? यदि आपके खाने से मेरा पेट नही भर सकता तो मेरी प्रार्थना से आपका कल्याण कैसे हो सकता है ? धर्म तो अपने ही शरीर से किया जा सकता है ।"

पालतूसिह और आज का श्रमण

भगवान महावीर ने श्रमण को सिह की उपमा दी है । बताया है—श्रमण सिह की भाति निर्भीक और स्वाश्रयी होता है ।

किन्तु आज मैने सरकस का एक पालतूसिह देखा । वह अपने मास्टर के इशारो पर चल रहा था, कभी छोटी-छोटी लडकिया और कभी बदर उसकी पीठ पर बैठ कर जैसे उसका मजाक कर रहे थे ।

मैने सोचा—आज का श्रमण भी क्या पालतू सिह नही बन रहा है ? वह भी तो आज पू जीपतियो और सत्ताधारियो के इशारो पर चल रहा है और तुच्छ एव क्षुद्र व्यक्ति उस पर अपना रोब डाल रहे है ?

शुद्ध-प्रबुद्ध

जिसका हृदय शुद्ध होगा, वह प्रबुद्ध भी होगा । प्रबुद्ध हृदय प्रसिद्धि के लिए नही, सिद्धि के लिए प्रयत्नशील रहता है ।

जब धर्म जीवन मे उतरेगा …

रोटी पेट पर बाधने से नही, किंतु पेट मे जाने से भूख मिटाती है।

दवा हाथ मे लेने से नही, किंतु मुह मे खाने से रोग मिटाती है।

वैसे ही धर्मशास्त्र हाथ मे लेने से या शब्दपाठ करने से कल्याण नही करेंगे, उन्हे जीवन मे उतारना होगा, तभी वह धर्म मनुष्य का सच्चा धारक और उद्धारक वन सकेगा।

भूमि पर अधिकार

कहते है—एकवार ईसा के पास दो जमीदार अपना झगडा लेकर पहुचे। दोनो ने कहा—यह भूमि हमारी है, हमारे अधिकार की है, पर हमारे वीच झगडा पैदा हो गया है, अत आप न्याय करदीजिए कि यह किसके अधिकार की है ?

ईसा ने भूमि से एक मुट्ठी रेत उठाई, कानके पासलगाकर वोले— भूमि तो कुछ और ही वात कह रही है !

क्या ?—जमीदारो ने आश्चर्यपूर्वक पूछा !

उस पर तुम्हारा अधिकार नही, किंतु तुम्हारे पर ही भूमि का अधिकार है—ईसा ने उत्तर दिया—एकदिन तुम दोनो को उसने पैदा किया, और एक दिन तुम्हे अपने पेट मे सुला लेगी, फिर किसलिए झगडते हो ?

प्रेरणा और अध्यवसाय

मानव की महत्वपूर्ण सफलताओ का रग-विरगा इतिहास एक वात का वज्र आघोष कर रहा है—सफलता के लिए प्रेरणा की प्रतीक्षा मे मत वैठे रहो, तीव्र अध्यवसाय के साथ जुट पड़ो—सफलता मिलेगी, निश्चित ही मिलेगी।

एक लोकोक्ति है—सफलता मे ९९ प्रतिशत अध्यवसाय और केवल एक प्रतिशत प्रेरणा का सम्मिश्रण है।

अध्यवासी व्यक्ति भी अपने प्रयत्नो से ऐसी परिस्थितियो का सृजन कर डालता है कि वे प्रयत्न ही प्रेरणा बन कर अनुप्रेरित करने लगते है।

प्रेरणा, अवसर, या 'मूड', अकर्मण्यता पर गुलाबी परदा है। जुट जाना, कर डालना, यह मनुष्य के सकल्प का मत्र है जो सफलता के मन्दिर पर पढा जाता है।

भगवान महावीर का यह वचन कितना उत्प्रेरक है—

उट्ठिए नो पमायए —आचाराग

—उठो, आलस्य छोड़ दो, इन्तजार मत करो, जो करना है कर डालो।

अभितुर पार गमित्तए —उत्तराध्ययन

—यदि उस पार चलना है तो जल्दी करो, वाहन की प्रतीक्षा मत करो, चल पडो, तुम्हारे चरण ही वाहन बन कर तुम्हे उस पार पहुचादेगे।

अज्ञान का ज्ञान

ससार मे ज्ञानी बहुत मिलते, पर जो अपने अज्ञान को जान सके वैसा ज्ञानी कोई विरला ही मिलता है। वास्तव मे सच्चा ज्ञान तो यही है, जिससे अपने भीतर मे छुपे अज्ञान, दोष और दुर्गुणो का बोध हो सके।

एक गुरु के पास धार्मिक प्रकृति के सरल स्वभावी शिष्य ने मन की उदासी प्रकट करते हुए कहा—"मैंने प्रभु-भजन और धर्मग्रथो के स्वाध्याय मे दीर्घकाल बिताया है, किंतु अब तक भी मुझे लगता है, मेरा अज्ञान कम नही हुआ है, मेरे अन्तर दोष कभी-कभी मन को दूषित कर डालते है, गुरुदेव! अब मुझे क्या करना चाहिए?"

गुरु ने प्रसन्नभाव से शिष्य की पीठ पर हाथ रखते हुए कहा—"वत्स! तुम्हे यह ज्ञानोदय मिला है कि तुम एक अज्ञान एव विकार-ग्रस्त दुर्बल साधक हो, क्या यह कम सिद्धि है? जीवन भर शास्त्र

रटनेवाले भी अपने आप को नही पहचान पाते, वह दुर्लभ सिद्धि तो तुम पा चुके हो, अब तो बस एक झटके की जरूरत है, जब यह अज्ञान का आवरण फटकर चूर-चूर हो जायेगा। मुख्य सिद्धि तो अपने अज्ञान का ज्ञान करना ही है।"

इस कहानी के हार्द पर विचार करते-करते मुझे सुकरात का एक वचन याद आगया—अपनी मूर्खता को समझनेवाला व्यक्ति ससार का सबसे अधिक बुद्धिमान है। मूर्ख तो वह है, जो मूर्ख होकर भी अपने को बुद्धिमान समझता है।"

आत्मस्वरूप का ज्ञान

जो अपने स्वरूप का अनुभव करता है, वह कही भी जाये कही भी रहे, आत्मा के निकट ही रहता है। उसे ससार का कोई ज्ञान कम हो या अधिक, पर आत्मा का ज्ञान उसे प्राप्त हो गया तो उसे किसी भी ज्ञान की कमी नही।

कहते है जब श्री शकराचार्य अपने गुरु के पास ज्ञान दीक्षा लेने गये तो गुरु ने सबसे पहला प्रश्न किया—"त्व कोऽसि ?" तुम कौन हो ?

शकराचार्य ने विनयपूर्वक कहा—

चिदानदरूपो शिवोऽहं शिवोऽहम्

—मैं चिदानन्द स्वरूप शिव हू, शिव हू।"

गुरु ने कहा—तुमने सब कुछ जान तो लिया, और अब क्या जानना शेष रह गया है ?

शक्ति और शाति

दर्शन ने मनुष्य को बाह्यरूप मे भले ही शक्तिसपन्न न बनाया हो, पर उसने अतर की अनन्तशक्ति को जागृत अवश्य किया है, विघ्न की असीम शक्ति का ज्ञान भी दिया है। और शक्ति जागरण के साथ-साथ शाति भी प्रदान की है।

विज्ञान ने मनुष्य को अन्तररूप मे बिल्कुल हीन बना दिया है, उसने केवल बाह्यशक्ति की उपासना की है, शक्ति उसे अवश्य मिली है, पर शाति कोसो दूर चली गई।

दर्शन और विज्ञान का यदि आज मिलन हो जाय, तो मानव को शक्ति के साथ शाति का वरदान मिल जाये।

विचार

विचार ही जगत का निर्माता और नियता है। ससार के समस्त आविष्कार, अनुसधान और निर्माण सर्वप्रथम मनुष्य के विचार मे जन्म लेते है, फिर स्थूल आकार ग्रहण करते है।

हमारा भूतकाल क्या है ?—हमारे विचारो की बीती सृष्टि !

हमारा वर्तमान क्या है ? विचारो के अनुकूल ढलनेवाला क्षण !

हमारा भविष्य क्या है ? विचारो के गर्भ से जन्म लेनेवाला समय !

विचार पवित्र होगे, विराट् होगे और कल्याणकारी होगे तो हमारी सृष्टि भी वैसी ही होगी।

सयम : कानून भी, आजादी भी

एकबार बर्ट्रेंड रसेल से किसी ने पूछा - "आप मनुष्य के लिए कानून आवश्यक समझते है या आजादी ?"

रसेल ने कहा—"दोनो ही ! उसकी आक्रमणात्मक एव शोषक भावनाओ के दमन के लिए कानून आवश्यक है, और रचनात्मक—सेवा, सहयोग एव कल्याण—कार्यो के सृजन की भावनाओ के लिए आजादी !"

आध्यात्मिक दृष्टि से जो सयम का उपदेश दिया गया है, वह एक ही साथ इन दोनो पक्षो की पूर्ति करता है। सयम निषेधात्मक भी है, विधेयात्मक भी। वह मन की दुर्वृत्तियो—हिसा, क्रोध, असत्य आदि भावनाओ पर अकुश लगता है, और सद्वृत्तियो—सेवा,

सहयोग, जनकल्याण आदि कार्यो मे प्रोत्साहित करता है। इसलिए सयम आज की भाषा मे कानून का भी काम करता है, और आजादी का भी। असद् का निरोध और सद् का विकास—करना ही सयम का मुख्यरूप है।

ज्ञान को मुक्त करो

विद्या और ज्ञान—मुक्ति देनेवाले हैं—सा विद्या या विमुक्तये—यह विद्या का आदर्श है। ज्ञान प्रकाशक है, स्वय प्रकाश है। पर आज मैं आश्चर्य के साथ देख रहा हू - उस विद्या को वदी वना दिया गया है, ज्ञान भी कैद कर दिया गया है—धन, सत्ता और प्रभुत्त्व की कारा मे।

मुक्तिदाता ज्ञान आज मनुष्य के ही भीतर वदी वना है, उसके अधविश्वासो और रुढियो की चारदीवारी प्रकाश को रोक रही है। उसका अहकार ज्ञान की गरिमा पर सिहासन लगाकर वैठ रहा है—और सत्ता एव प्रतिष्ठा ने ज्ञान को उसी प्रकार अपना दास वनाने का दभ रचा है जैसा रावण ने देवताओ को अपने वश मे करने का पड्यत्र रचा था।

ज्ञान को उन्मुक्त कीजिये, जिज्ञासा एव श्रद्धा के रस से उसके प्राणो को सीचिये। सत्य के अनन्त-गगन मे उसे उन्मुक्त उडाने भरने दीजिए तभी वह ज्ञान आपको मुक्ति देगा, मुक्त करेगा।

श्रद्धा के प्रश्न : ज्ञान के उत्तर

एक दिन मेरी श्रद्धा ने कुछ प्रश्न पूछे और मेरे ज्ञान ने उनका उत्तर दिया—

प्रश्न—आपके सिद्धान्तो का सवसे वडा प्रचारक कौन है ?

उत्तर—हृदय।

प्रश्न—जीवन मे सबसे बडा शिक्षक कौन है ?

उत्तर—अनुभव !

प्रश्न—सबसे श्रेष्ठ और सरल पुस्तक कौन सी है ?

उत्तर—ससार !

प्रश्न—सबसे बडा विश्वासी मित्र कौन है ?

उत्तर—भगवान !

प्रश्न—सबसे बडा दु ख क्या है ?

उत्तर—प्राप्तस्थिति से असतोष !

ज्ञान

कर्म से व्यवहार की शुद्धि हो सकती है, किंतु उससे पूर्व मन की शुद्धि के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। ज्ञान न केवल मन का परि-मार्जन करता है, अपितु कर्म को भी शुद्ध और निष्काम बनाता है।

महानता की सीढी

मानव ! तुम महानता की कितनी ऊची सीढियो को छू सकोगे, इस का उत्तर कही और से नही, किंतु स्वय के चरित्र से ही पा सकोगे। तुम मानव कल्याण के लिए कितना अधिक श्रम करते हो, और अपने जीवन मे कितने निष्ठावान हो, यही वह सीढी है, जो तुम्हे तुम्हारे कृतित्व के अनुपात से महानता के शिखर पर पहुचायेगी।

तर्क का कोलाहल

आज जिधर देखो—ज्ञान की बाढ आ रही है, पर कर्म की भूमि फिर भी सूखी पडी है। विचारो और तर्क-वितर्क के तूफान मचल रहे है, किंतु आचार के क्षेत्र मे गहरी जडता और कु ठा छाई हुई है।

महाकवि दिनकर ने इस स्थिति का चित्रण करते हुए बडी सवेदनात्मक भाषा मे कहा है—

> तर्क मे तर्कों का रण छिड़ा
> विचारो से लड़ रहे विचार !

ज्ञान के कोलाहल के बीच
डूबता जाता है ससार !
ज्ञान के मरु मे चलता हुआ
आदमी खोता जाता है !
हृदय से सम का शीतल वारि
और कम होता जाता है।

शक्ति-विरक्ति

एक बार मनुष्य अपने सतापो से पीडित होकर भगवान के समक्ष गया और दीन याचना की—'प्रभो ! मुझे शक्ति दो, मैं इन संतापो से लड सकू !"

भगवान ने शक्ति के स्वामी शिव के पास मनुष्य को भेज दिया। प्रार्थना और तपस्या के वाद महाशिव ने प्रकट हो कर पूछा—"क्या चाहिए ?"

',प्रभो ! इन सतपों से मुक्त होने की शक्ति दीजिए !"

दयापूर्वक महाशिव ने कहा—"वत्स ! इन सतापो से मुक्त होने के लिए शक्ति की नही, विरक्ति की जरूरत है। शक्ति तो स्वय सताप का स्रोत है। जहा शक्ति है, वहा 'अह' है, जहा 'अह' है वही सघर्ष, सताप-ताप की हजारो-हजार लहरे परस्पर टकराती रहती है। सताप-मुक्ति के लिए शक्ति को छोडकर विरक्ति की उपासना करो !"

वास्तव मे शाति की दौड मे आज ससार शक्तिसपन्न होने की दौड़ कर रहा है, पर शक्ति तो स्वय अशाति पैदा करती है, शाति प्राप्ति के लिए तो मनुष्य को शक्ति से हट कर विरक्ति की ओर आना होगा।

यदि आपने सुख दिया है

यदि आपने बबूल का पेड अपने घर मे लगाया है, तो उसके कॉटो से भी आप नही बच सकते।

यदि आपने आम का पेड लगाया है, तो उसके मधुर फल भी आप को अवश्य मिलेगे।

यदि आपने किसी को कष्ट दिया है, धोखा दिया है तो उसके कटु परिणामो से भी आप भाग कर छूट नही सकते।

यदि आपने किसी की सेवा की है, सुख पहुचाया है, तो उसके मधुर परिणामो से आप को अवश्य ही सुख एव आनन्द की अनुभूति होगी।

शस्त्र भी शास्त्र बन जाता है ..

भगवान महावीर ने कहा है—

अविवेकी और दुराग्रही व्यक्तियो के हाथ में जाकर शास्त्र भी शस्त्र बन जाता है, और विवेकयुक्त सम्यक् ज्ञानी पुरुषो के शस्त्र भी शास्त्र का काम कर देते है।

प्रहार के लिए उठी हुई बाहुवली की मुट्ठी आत्मबोध का कारण वन गई और हाथ से गिरी हुई अगूठी भी भरत जी के अन्तर वैराग्य को जगा गई।

भगवान महावीर जैसे परम-पुरुष का निमित्त पाकर भी सगम जैसे अधमजीवो ने घोर पापकर्म का बधन कर लिया, और वध-शाला की ओर ले जाते चोर को देखकर सयति राजा का हृदय प्रबुद्ध हो गया—तो यह है निमित्त को योग्य-अयोग्य रूप मे ग्रहण करने की क्षमता।

कहा जाता है मुहम्मद साहब के पास एक तलवार थी, जिस पर उन्होने ये चार वाक्य अकित करवाये थे—

१ जो तेरे साथ अन्याय करे, तू उसे भी क्षमा करदे।

२ जो तेरा बुरा करे, तू उसका भी भला कर !

३. जो तेरा खून करे, तू उसके लिए भी प्रेम वरसा !

४. अपने प्राणो का वलिदान करके भी तू सत्य की रक्षा कर !

जो तलवार क्रोध की ज्वाला को प्रज्वलित करनेवाली है, उसे भी क्षमा का पाठ पढानेवाली वनाकर सचमुच ही मुहम्मद साहव ने शस्त्र को शास्त्ररूप मे उपस्थित कर दिया था।

उधार भूल गया है !

मनुष्य किसी को एक पैसा उधार देकर भी सदा उसे याद रखता है। किंतु आश्चर्य है इस जगत् से—पृथ्वी, पानी, अग्नि एव आकाश से सपूर्ण जीवन तत्त्वो को उधार लेकर भी उनका उपकार भूल गया है।

मनुष्य के शरीर का निर्माण आखिर क्या है ? पुद्‌गलपिंड का उधार लिया हुआ रूप ही तो है !

सफलता क्यो नही ?

भगवान को भी आजकल भक्तो ने सौदा वना लिया है। घड़ी भर पूजा की और चाहते है वस सव इच्छाए पूरी हो जाय ! एक कौड़ी दान दिया और चाहते है जग मे कीर्ति फैल जाय। आम भी लगाने के वारह वर्ष वाद फल देता है, तो धर्म की आराधना और प्रभु की पूजा इतनी जल्दी कैसे फल देगी ?

दूसरी वात यह भी है कि लोग जप-तप पूजा-पाठ आदि करते जरूर है, पर मन उसमे कहा लगता है ? धर्म को शब्दो मे दुहराते हैं और व्यवहार मे भूल जाते हैं। फिर पूजा-पाठ जप-तप मे सिद्धि कैसे प्राप्त हो ?

हजरत इब्राहीम से जो, वलख की वादशाहत छोड़कर सूफी फकीर वन गये थे एकवार लोगो ने पूछा—हजरत ! यह तो वताइये कि हमारी दुआ (प्रार्थना) कवूल क्यो नही होती ?

हजरत ने उतर दिया—तुम लोग यह तो जानते हो, कि स्वर्ग (वहिश्त) और नरक (दोजख) है, मगर स्वर्ग को पाने और नरक से वचने का उपाय नही करते। तुम यह तो जानते हो कि मुझ मे ऐब (बुराई) है, फिर भी दूसरो के ही ऐब निकालते रहते हो, तो भला ऐसे आदमी की दुआ कैसे कवूल हो ? अच्छा हो कि तुम मन और कर्म में एक हो जाओ ! खुदा जरूर तुम्हारी दुआ कवूल करेंगे !"

मृत्यु के मुंह मे

सर्प के मुह मे वैठा हुआ मेंढक यह सोचकर प्रसन्न होता है कि उसे वैठने के लिए कितना नरम और मुलायम सिहासन मिला है। किंतु उसे यह पता नही कि दो क्षण बाद यही सिंहासन उसके लिए शूली वन जायेगा। साप उसकी जीवन-लीला को नील जायेगा।

मनुष्य जीवन की भी ऐसी ही विडम्वना है। मृत्यु के मुख मे पडा मानव जीवन के क्षणिक आनन्द भोग पर भूल रहा है, पर उसे यह ज्ञान नही कि ये भोग ही उसके रोग की शुरुआत है, यह आनन्द ही उसके दुख की जड है। पता नही, मृत्यु का साप कव उसे लील जाये और जीवन लीला समाप्त हो जाय !

सुख का खजाना

एक भिखारी रत्नो के खजाने पर बैठा—भीख माग रहा था, आनेजाने वालो के सामने हाथ जोड कर गिडगिडा रहा था—"बावा ! गरीब को दो पैसे देते जाओ !"

एक सिद्धपुरुष आया, उसने भिखारी का हाथ पकड कर उठाया और नीचे से खजाना खोल कर वताया—'मूर्ख ! तू इतने बडे खजाने का स्वामी होकर भी भीख माग रहा है ?'

आत्मा की भी यही दशा हो रही है ! अनन्त आनद के खजाने का स्वामी होकर भी वह 'सुख ! सुख !' पुकारता हुआ चारो ओर

भटक रहा है।' गुरुरूप सिद्ध पुरुष उसे सावधान कर रहे हैं—"अज्ञान! सुख का स्रष्टा और सुख का स्वामी तू खुद है, सुख तेरे पास है, फिर पुकार कहा लगा रहा है ?"

मुक्ति : मृत्यु से अभय

उपदेश सुनने को एकत्रित हुए शिष्यों से आचार्य ने प्रश्न किया—"क्या तुम सभी मोक्ष चाहते हो ? एक स्वर में सबने उत्तर दिया—'हां! गुरुदेव!'

"मुक्ति से पहले मृत्यु से निर्भय होना पडता है, तुम मे मे कौन मृत्यु का सहर्ष वरण करने के लिए प्रस्तुत है"—आचार्य ने प्रश्न को आगे बढाया।

शिष्यो की भयभीत आकृति जैसे विकट प्रश्न पर उलझ गई थी, सब मौन थे!

आचार्य ने कहा—"देह की ममता त्यागे बिना मृत्यु का भय नही मिटता, और मृत्यु से अभय हुए बिना मुक्ति कैसी ? फिर तुम्हारी मुक्ति-कामना का क्या अर्थ ?"

शिष्यों की दृष्टि गुरु के चरणो में टिकी हुई थी, गुरु ने अभय का उपदेश किया।

स्वर्ग चाहते हैं ?

'अगले जन्म में क्या चाहते हो ?' सभा में एक प्रश्न उपस्थित हुआ "—स्वर्ग! स्वर्ग! स्वर्ग!—" सैकड़ो हाथ ऊपर उठ गये!

"इस जीवन को क्या अनुभव कर रहे हो"—? दूसरा प्रश्न किया गया!

"इस जीवन मे तो नरक-से दुख भोग रहे है"—एक धीमी-सी आवाज आई और कई आवाज उसके साथ मिल गई—"यही हाल हमारा है!"

मैने गभीरता से कहा—"जो इस जीवन मे स्वर्ग का निर्माण

नही कर सकता, उसे अगले जीवन मे स्वर्ग का अधिकार कैसे मिलेगा ? देवता ही स्वर्ग का अधिकारी होता है, नारक नही ! अगले जीवन मे स्वर्ग चाहनेवालो ! इस जीवन को स्वर्ग बनाओ !"— मैने देखा—श्रोताओ की आँखो मे कुछ उदास प्रश्न उठ रहे थे, जिनका जवाब उनका हृदय नही दे पा रहा था ।

शाति कहा ?

एक सम्राट ने किसी युवक की अपूर्व वीरता पर प्रसन्न होकर उसे मन इच्छित वरदान मागने को कहा ।

युवक ने कहा—"मुझे धन नही चाहिए चू कि मेरे पिता ने वहुत-सा धन मेरे लिए रख छोडा है ! मुझे प्रतिष्ठा नही चाहिए—चू कि मेरी वोरता के कारण वह तो स्वय प्राप्त हो रही है। मुझे सत्ता नही चाहिए चू कि वह तो मेरे शासक के हाथो मे सुरक्षित है ही ! मुझे तो सिर्फ शाति चाहिए ।"

युवक की माग पर सम्राट हतप्रभ रह गया । वोला—"वह तो मेरे पास भी नही है ।" फिर भी अपना वचन पूरा करने के लिए उसने अपने कुलदेवता को याद किया ।

देवता ने कहा—सम्राट ! मै तो भौतिक सिद्धियो का स्वामी हू, शाति तो आत्मिकसिद्धि है, वह मेरे पास कहा ?

सम्राट ने दीनता से झु झला कर कहा—कही से भी दो, मेरा वचन पूरा करो ।

सम्राट के साथ युवक को लेकर कुलदेवता एक योगी के पास गया, और युवक की माग रखी ! योगी ने मुस्कराते हुए कहा—"मुग्ध प्राणियो ! शाति कही बाहर मिलती है ? जहा से अशाति पैदा होती है, वही से शाति प्राप्त होगी, वाहर नही, भीतर देखो ! तुम्हारे हृदय मे ही शाति का मूल है, वह दी नही जाती, प्राप्त की जाती है और प्राप्त भी क्या, सिर्फ अनावृत की जाती है ।

युवक, सम्राट और कुलदेवता एक साथ योगी के चरणो में विनत हुए, और शाति का वोधसूत्र पाकर अपने अपने स्थान की ओर चल दिए।

दौड़ो नहीं, मुडो,

फकीर शिब्ली ने एक युवक को वेतहासा दौडते हुए देखकर विस्मयपूर्वक पूछा—'इतनी जल्दी मे कहाॅ दौडे जा रहे हो ?'

युवक ने विना रुके दौडते हुए ही उत्तर दिया– 'अपने घर पर !'

शिब्ली ने पुन प्रश्न किया—"कौन-सा घर ?"

शीघ्रता से आगे वढते हुए युवक ने उत्तर दिया—"परमात्मा का घर ! उसी की खोज में दौड रहा हू।"

फकीर युवक के उत्तर पर मुस्कराया और फिर गभीर हो गया—"वाहर में दौडनेवाले युवक, परमात्मा को कहाॅ पाओगे ? परमात्मा वाहर मे नही, आत्मा में ही है, उसके लिए दौडो नही, अपने को मोडो, भीतर की ओर मुडो, परमात्मा के दर्शन होगे।"

विकल्पों का कपड़ा

एक सिद्ध योगी ने सेवा से प्रसन्न होकर अपने भक्त को कहा—"वह सामने मेरी झोली टगी है, जाओ, ले आओ।"

भक्त ने झोली लाकर सामने रख दी। योगी ने झोली से एक कपड़े में वधी हुई पारसमणि निकाली, और फिर चिमटा निकाल कर मणि को छुआ ! छूते ही लोहे का चिमटा सोना वन गया। भक्त आश्चर्य और उत्सुकता भरी नजरो से देख रहा था। योगी ने कहा—"तुम्हारी सेवा से प्रसन्न होकर यह पारसमणि तुम्हे देता हू, जव भी जरूरत पडे, लोहे को सोना बना सकते हो।"

भक्त का हृदय मारे प्रसन्नता से उछलने लगा, पर साथ ही वह आश्चर्यपूर्वक वार-वार मणि और चिमटे को उठा-उठा कर देख

रहा था। एक विचित्र प्रश्न उसके मन को कुरेद रहा था। योगी ने पूछा—"क्या बात है ? मणि को उठा-उठा कर देख क्या रहे हो ?"

भक्त ने कहा—"योगीराज ! बात यह है कि जब इस मणि को छूने से लोहा सोना बन सकता है, तो यह चिमटा जो हमेशा मणि के साथ इसी झोली में पड़ा रहा, इतने दिन सोना क्यो नही बना, और आज कैसे बन गया ?"

योगी ने हसकर कहा –"मूर्ख ! देख नही रहा है, मणि के ऊपर कपडा लिपटा जो रहता है। कपडा हटाकर छूने से ही लोहा सोना बन सकता है, केवल पास पडे रहने से नही।"

हमारा आत्मा पारसमणि है, उस पर विकार एवं विकल्प का कपडा जब तक लिपटा रहेगा, तब तक क्रियाकाडका कितना ही लोहा पास मे पड़ा रहे, सोना नही बन सकता। जब विकल्पो का आवरण आत्मा पर से हटेगा तभी क्रियाकांड मे निखार आयेगा।

तृष्णा की विडम्बना

एक वृद्ध पुरुष मृत्युशय्या पर पड़ा छटपटा रहा था। डाक्टरो ने उत्तर दे दिया, परिवार के लोग उसके चारो ओर चितातुर बैठे थे। वृद्ध ने एक बार आँख खोली, और आतुर होते हुए पूछा—"मेरी पत्नी कहां है ?"

पत्नी ने धैर्य बधाते हुए कहा—मैं आपके चरणो मे ही बैठी हू, घबराइए नही !

वृद्ध ने दूसरा प्रश्न किया—बडा लडका कहाँ है ?

हा, पिताजी ! मैं यही पर हू !—लड़के ने उत्तर दिया।

मझला लड़का ?

वह भी आपके सामने खडा है—चिता न करिए, अतिम समय मे जरा भगवान का स्मरण कीजिए !

मझले लड़के ने उत्तर दिया। और छोटा ...?

वह भी यह रहा....!

नालायको ! सब यही जमे बैठे हो तो फिर दुकान पर कौन गया है ?—वृद्ध ने क्रोध में आकर कहा !

मनुष्य की लालसा और तृष्णा की यह कितनी बडी विडम्बना है, कि मृत्युशय्या पर पड़े हुए भी मन दुकान में लागा हुआ है !

सुख कहां पर ?

मनुष्य सुख की खोज में जगल-जगल की खाक छानता रहा है, किंतु सुख का स्पर्श उसे वाहर में कही नही मिला।

पौराणिक श्रुति के अनुसार—समुद्र मथन के समय शशि और अमृत के साथ सुख भी निकला। देवताओ को वह वडा प्रिय लगा। सोचा—इसे मनुष्य से वचाना चाहिए ! कहा छिपाए ? मनुष्य की गति तो वड़ी विलक्षण है, स्वर्ग-पाताल का कौना-कौना ढूँढ लेगा और इसे हडप लेगा।"

देवताओ की चिंता को देखकर सुर-गुरु ने कहा—इसे मानव के हृदय की गहराई मे ही छिपा दो। चूकि वह सुख के लिए अन्यत्र सर्वत्र घूमता रहेगा, किंतु अपना हृदय कभी नही टटोलेगा !

सुरगुरु के परामर्श से देवताओ ने वैसा ही किया ! तब से मनुष्य सुख के लिए दर-दर भटक रहा है, पर वह अभागा कभी अपना हृदय नही टटोलता, जहा वस्तुत. सुख छिपा हुआ है।

वासना-विजय

मुक्ति का राही विजेता होता है, और वह 'पर' का नही किंतु 'स्व' का विजेता होता है। 'स्व' का विजेता सर्वप्रथम अपनी वासनाओ को विजय करता है, देह की आसक्ति और मन की ममता को दूर करता है, विकारो और इच्छाओ पर कठोर सयम

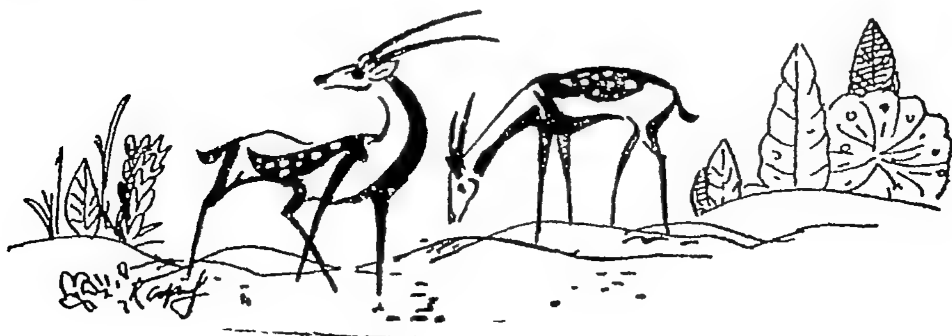
की साधना करता है, और इसी मार्ग के द्वारा वह 'स्व' पर विजय प्राप्त करता है।

भगवान महावीर ने दीक्षा लेने से पूर्व शरीर पर सुगंधित चन्दन आदि द्रव्यो का जो उवटन किया था उसकी सुगध कहते है कई महीनो तक उनके शरीर पर इस प्रकार गमकती रही, जैसे कोई सौरभ-पिंड ही हो। यह सुगध-उवटन उनकी देह-विजय की एक कठोर परीक्षा वन गई।

जब भगवान एकात जगल में आत्म-चितन मे लीन होकर ध्यानस्थ हो जाते तो भौरे उनकी देह की सुगध पर मडराने लगते। वे आकर बैठते और फिर उसे अचचल देखकर निर्भय होकर काटने लग जाते। भौरो के काटने से भगवान के शरीर मे गहरे घाव हो गये, पर फिर भी देह की ममता और वेदना की तिलमिलाहट उनकी लीनता व समाधि को भग नही कर सकी।

जव प्रभु भिक्षा के लिए नगर व गॉवो की गलियों मे घूमते तो उनके दिव्य मनोरम रूप पर सुन्दरिया मुग्ध हो जाती। मर्यादा का विवेक भूलकर विह्वल हो कामयाचनाएँ करने लगती, रमणियो की मोह भरी याचनाएँ उस वासनाविजयी के मन को तिलभर भी चचल नही वना सकी।

प्रभु महावीर ने अपने साधनाकाल में देह विजय एव वासना विजय की अपूर्व साधना कर विजेता का आदर्श जन-जन को सिखाया।



विचार-रश्मियां

नीति

और

सदाचार

द्वितीय-किरण

नीति-धर्म का फल है, जिममे सदाचार की सौरभ, सेवा, और सहयोग की मिठास एव दान, परोपकार, दया, मैत्री, कर्तव्यनिष्ठा आदि का मधुर रस भरा रहता है।

नीति ही राष्ट्र की धुरी है, समाज, परिवार एव व्यक्ति के जीवन की मर्यादाएं नीति पर ही स्थिर रहा करती हैं।

गाधी जी कहते थे—विना नीति का धर्म और विना धर्म की नीति ससार मे न कभी चली है, न चल सकती है।

प्रस्तुत विचार खण्ड मे नीति एव सदाचार के सहस्रो रग-विरगे रूपो पर उसका चिन्तन किया गया है। वह पाठको के समक्ष प्रस्तुत है।

नीति और सदाचार

एक क्षण भी :—

भगवान महावीर स्वामी ने उपदेश किया है—

समयं गोयम ! मा पमायए ! —उत्तराध्ययन १०।१

—हे गौतम ! समय मात्र भी प्रमाद मत कर !

यहा जीवन के एक क्षण का महत्व बताया है। आयुष्य का एक क्षण जितना कीमती है, उतनी कीमती ससार की अन्य कोई वस्तु नही है।

एक आचार्य ने कहा है—

आयुष क्षण एकोऽपि सर्वरत्नैर्न लभ्यते। —योगवाशिष्ट ६७।१५

—आयुष्य का एक क्षण ससार के सब रत्नो से भी नही मिलता।

एक कवि ने कहा है—

न कर उम्र की इक भी जाया घड़ी
के टूटी लड़ी, जब कि छूटी कड़ी।

गई एक पल भी जो गफलत में छूट,
तो माला गई साठ हीरो की टूट।

क्षमा

क्षमा—मनुष्य जीवन का श्रेष्ठ रस है।

किसी ने आचार्य से पूछा—ज्ञान का मधुर फल क्या है? आचार्य ने उत्तर दिया—

ज्ञानस्य परिपाकोऽयं स शमः परिकीर्तितः।

—ज्ञान का परिपाक है—शम! समता और क्षमा!

क्रोध

क्रोध मनुष्य के भीतर छुपी महान आग है। जैसे मोमबत्ती अपने ही शरीर को खुद खाती जाती है, वैसे ही क्रोध जहा पैदा होता है वहा के समस्त सद्‌गुणो को निगलता जाता है।

क्रोधी आदमी अपने ही शरीर का रक्त, मास एव वीर्य जलाकर भस्म कर डालता है।

मधुरता

ससार में जो मधुर होता है उसे, लोग अपनाते है, किंतु जो कठोर होता है, उसे तिरस्कार कर निकाल देते है। अनार के दाने को तो सब लोग खाते है, किंतु ऊपर का छिलका फेक देते है। आम का गूदा सभी प्यार से गट कर जाते है, किंतु उसकी गुठली और छिलके लोगो के पैरो मे ठोकरे खाते है।

मधुर और कठोर की भी यही दशा होती है। जो व्यक्ति सरल-स्वभावी, मिष्ठभाषी होता है उसे हर कही आदर, सम्मान और प्रेम मिलता है, किंतु जो कटुभाषी, कठोर हृदयवाला तथा दुष्ट स्वभाव का होता है वह सब जगह दुर-दुर किया जाता है।

प्रेम और मैत्री

प्रेम और मैत्री में अन्तर है।

प्रेम सहज होता है, मैत्री की जाती है।

प्रेम किया नही जाता, हो जाता है। मैत्री की जाती है। किंतु मैत्री भी जव विशाल रूप धारण कर लेती है तो वह भी प्रेम की तरह स्वाभाविक बन सकती है।

चोरी

चोरी करने के मुख्य चार कारण है—

१. वेकारी—इसका कारण है राज्य की अव्यवस्था

२ फिजलखर्ची—इसके दो कारण है—
दुर्व्यसन और सामाजिक कुप्रथाये।

३. यश कीर्ति की भावना—कीर्ति के लिये कवि, लेखक दूसरो की रचनाएँ चुराते है। व्यापारी आदि दूसरो का धन उड़ाते है। साधु सत पतित होकर भी साधु के नाम से अपनी पूजा करवाते हैं।

४. स्वभाव—कई व्यक्ति आदत से मजबूर होकर ही चोरी करते है।

धोखा

'ठग। किसी का सगा नहीं'—यह कहावत प्राय सही है। जो व्यक्ति दूसरो को धोखा देता है, वह स्वय भी धोखे मे फस कर अपना अहित कर लेता है।

एक व्यक्ति ने 'सर्पदंश' के इन्जेक्शन निकाले। १६ रुपया कीमत रखी, फिर भी काफी चले, लोगो को उससे फायदा हुआ। एक व्यक्ति ने उसी मार्के पर नकली इन्जेक्शन निकाले, आठ रुपये मे वेचना शुरु किया। अव पहले १६ वाले का कारवार वद पड़ गया। एकदिन नकली इन्जेक्शन वनाने वाले के लडके को सापने काट लिया,

अब असली इन्जेक्शन कही मिला नही, अत. नकली इन्जेक्शन लगाया, पर लडका नही बचा, तब वह सिर पीट कर रोने लगा—'हाय ! मेरा पाप मुझे ही खा गया।'

याद रखो

क्रोध यमराज है। तृष्णा वैतरणी नदी है।

विद्या कामधेनुगाय है, और सतोप नन्दनवन है।

लोभ नरक है, चिता राक्षसी, कामना विप उगलनेवाली सर्पिणी है।

पसद ना पसद

एक मुसलमान औलिया हुए है—तजकिरतुल। अपने अनुभवो मे एक जगह उन्होने लिखा है—

हजरत मुहम्मद ने कहा है—खुदा तीन को नापसद और तीन को बहुत नापसद करता है।

१ कुकर्मी को नापसद, और बूढे कुकर्मी को बहुत ही नापसद।

२ कजूस को नापसद और धनोकजूस को बहुत ही नापसद !

३. अहकारी को नापसद और अहकारी साधु को बहुत ही नापसद !

इसी तरह तीन को पसद और तीन को बहुत पसद करता है।

१ भक्त को पसद और जवान भक्त को बहुत पसद !

२ सूरमा (वीर) को पसद, और साधु सूरमा को बहुत पसद।

३. दीन को पसद और धनवान दीन को बहुत पसद !

चीनी और क्रोध

क्रोधी मनुष्य—रुक्ष एव कठोर होता है। आगमो की उक्ति है—क्रोध करनेवाला स्नेह एव सद्भाव का नाश कर डालता है[1] हृदय

---

१ कोहो पीइ पणासेइ —दशवैकालिक ८

की मृदुलता, स्निग्धता एव मधुरता क्रोध से नष्ट हो जानी है ।[1]

क्रोध का प्रभाव सिर्फ मन पर ही नही, शरीर पर भी पडता है। क्रोध से रक्त में उवाल आ जाता है । क्षार तत्त्व वढ जाते है, चीनी की कमी हो जाती है । और चीनी की कमी के कारण मनुष्य—चिड चिड़ा, डरपोक, खूखार और रुद्र बन जाता है ।

सुप्रसिद्ध रसायन वेत्ता एडवर्ड पीदोवस्की ने मानव स्वभाव का रासायनिक विश्लेषण कर यह सिद्ध किया है—कि एक भद्र व्यक्ति अभद्र, शॉत एव गभीर व्यक्ति चिडचिडा और उतावला तथा एक वहादुर व्यक्ति चूहे के जैसा डरपोक वन जाता है—जव रक्त मे चीनी की कमी होती है ।[2]

यह भी प्रयोग कर देखा गया है कि क्रोध मे लाल-पीले हुए व्यक्ति को एक गिलास शर्वत पिला दिया जाय तो उसका क्रोधावेग स्वत. ही कम होने लग जाता है ।

मानव-स्वभाव पर इन रासायनिक प्रयोगो से जो वात आज स्पष्ट हो रही है वह यही प्रगट करती है कि क्रोध से रक्त मे रुक्षता व कटुता के तत्त्व वढते है, और उन तत्त्वो की कमी के कारण मानव अत्यधिक उग्र व रुक्ष होता चला जाता है ।

शृगालवृत्ति

शृगाल जमीन मे गड़े हुए मुर्दो को निकाल कर उनका सडा हुआ मास खाने मे आनन्द अनुभव करता है । कुछ मनुष्य भी जीवन मे शृगालवृत्ति से चलते हैं। वे पुराने, वासी, दफनाये हुए गदे विचारो के मुर्दे निकाल कर खाना पसद करते है। ताजे स्वच्छ विचार उनको अच्छे नही लगते ।

---

१ रोसेण रुद्द हिदओ—भगवती आराधना १३६६ ।

२ 'न्यू कैमिस्ट्री' से उद्धृत । नवनीत १९५२, फरवरी पृ० ५०१ ।

शूकरवृत्ति

शास्त्रो में दुष्ट दुराग्रही मनुष्यो के स्वभाव की तुलना शूकर की वृत्तियो से की गई है। शूकर जैसे चावल और मिष्ठान्न का भोजन छोडकर गदगी खाने को ललचाता रहता है,[1] वैसे ही दुराग्रही मनुष्य, सत्य के मिष्ठान्न से मुँह फेर कर, सद्गुणो के ताजा अन्न को छोडकर असत्य और दुर्गुणो की गंदी वस्तुएँ ही खाना पसद करते है।

वचन की चोट

वचन की चोट इतनी गहरी है कि तन पर कही उसका प्रहार दिखाई नही देता, किंतु मन पर गहरे घाव हो जाते हैं।

और आश्चर्य तो यह है कि उन घावो की मरहम पट्टी भी उसी वचन के पास है, जिसने घाव किये हैं। वे ही वचनयदि मधुर, क्षमा याचना के साथ निकलते है, तो मारक ही तारक वन सकते है, प्रहारक ही उद्धारक वन सकते हैं।

वचन का घाव वचन से ही भरता है। या भरता है भूल जाने से।

दर्जी वनकर....

यदि किसी पर आलोचना कि कैंची चलाते हो, तो पहले अपने को दर्जी वनालो। चूहे की तरह आदत से लाचार होकर सुन्दर वस्त्रो को कुतर-कुतर कर रख देने से तुम दर्जी नही कहला सकते।

ईक्षा किसी वस्तु को देखनाभर पर्याप्त नही होता, किंतु समीक्षा—सद्‌उद्देश्य के साथ देखना आवश्यक है। आलोचना की जगह समालोचना करना सीखो।

---

१ कण कुडग चइत्ताण विट्ठ भुजइ सूयरे —उत्तराध्ययन

कांट छाट भी करते हो तो कसाई की तरह नही, डाक्टर की तरह करो।

धर्म, साहित्य और समाज की समीक्षा मे उसके विद्रोह की नही, किंतु सदोह—समन्वय की भावना रखो।

जुए के छह दोष

हिन्दी मे एक उक्ति है—

भई गति साप-छछुन्दर केरी।

जब मनुष्य अविवेकपूर्ण कुछ कार्य कर बैठता है, और उसमे बुरी तरह फस जाता है, तब न तो उससे निकलते बनता है, और न फसते। उस दशा को 'साप-छछुन्दर दशा' कहा जाता है। साप छछुन्दर को पकड लेता है, तब यदि निगल लेता है तो कोढी बन जाता है, और छोड देता है तो अधा।

तथागत बुद्ध ने एक बार श्रेष्ठी पुत्र शृगाल को सबोधित करके इसी दृष्टात द्वारा जुआरी की दशा की तुलना करते हुए कहा—जुआ ऐसा दुर्व्यसन है, जिसे जीतने पर भी परेशानी और हारने पर भी चिता। जुआरी दोनो दशाओ मे ही दुख एव शोक से दबा रहता है।[1]

जुए के छह दोष बताते हुए बुद्ध ने कहा है :—

१ जुआ जीतने पर दूसरो से वैर बढ जाता है।

२ हारने पर धन-नाश की चिंता बढती है।

३ तत्काल धन का नाश हो जाता है।

४ जुआरी पर कभी कोई विश्वास नही करता।

५ मित्र एव स्वजन उसका तिरस्कार करते है।

६ जुआरी के बाल-बच्चो का सम्बन्ध होने में कठिनाई आती है।

---

१ दीर्घनिकाय, सिगालोवाद ७३३।८

मित्र-अमित्र

ससार मे मित्र-अमित्र की पहचान जितनी सरल है, उतनी ही कठिन है। प्राय हम उन लोगो को अपना मित्र समझ लेते है— जो हँस-हँस कर वाते करते है, हमारी प्रशसा करते है, और भविष्य के सुनहले स्वप्न दिखाकर हमारा दिल बहलाते रहते है किंतु सचमुच मे यह लक्षण मित्र के नही, अमित्र के है।

तथागत बुद्ध से एक बार किसी ने मित्र अमित्र के लक्षण पूछे तो बुद्ध ने कहा—

"पराया धन हरनेवाले (पराये धन पर मौज करनेवाले) बातूनी, खुशामदी और मौज शौक में धन का अपव्यय करानेवाले मित्रो को अमित्र समझना चाहिए।"

"मित्र उसी को जानना चाहिए, जो उपकारी हो, सुख-दुख में साथ देता हो, हित की वात कहता हो, और सदा अनुकपा करने वाला हो।"

मित्र-अमित्र की यही सच्ची पहचान है।

सीधे मारग चल !

सीधे और सरल मार्ग पर चलनेवाला आराम से अपने लक्ष्य पर पहुच सकता है, किंतु उलटे मार्ग पर चलनेवाला लक्ष्य से दूर भटकता जाता है और सकटो से घिर जाता है।

गुरु नानकदेव ने कहा है—

> रे मन डीगि न वोलिए सीधे मारग धाऊ !
> पाछे वाघु डरावणो, आगे अगिनि तलाउ !

—मन ! सीधे मार्ग पर चल, उलटे मारग पर चला तो आगे अग्नि की ज्वालाएँ धधकती मिलेगी और पीछे भयकर वाघ खडे दिखाई देगे।

प्रभाव और भाव

एक वक्ता ने वहुत ही जोरदार भापण दिया। लच्छेदार शब्दो मे अपना प्रभाव जमाने की काफी चेष्टा की भापण के बाद वे मुझसे पूछने लगे—"कहिए, मेरे भाषण का कैसा प्रभाव पड़ा ?"

मैंने जरा मुस्कराकर कहा—"वधु ! प्रभाव तो तब वढता जब कुछ भाव होता ! भावशून्य भापण का क्या प्रभाव पडेगा ?"

आज हमारे जीवन मे सर्वत्र यही विडम्वना है, हमारे पास न भाव है न सद्भाव ! किंतु हम प्रभाव वढाने की सतत चेप्टा किये जा रहे है।

चौकन्ने रहो !

जव तक बुद्धि के द्वार खुले है, विचार वहाँ न आये यह कभी सभव नही। लेकिन चौकन्ने रहो कि कौन विचार किसलिए आ रहा है। गलत विचारो को रोक दो, अच्छे विचारो को आने दो तभी तुम कुशल पहरेदार कहलाओगे।

वेसब्री

वेसब्री—अधीरता एक भयानक मानसिक रोग है, इसमे –

- भविष्य को देखने की दूर दृष्टि-क्षीण हो जाती है।
- मन का सतुलन विगड जाता है।
- उच्च सकल्पो की धमनियो मे शक्ति का रक्त सचार कम हो जाता है।
- आनन-फानन मे मालामाल हो जाने की खमीर से मन चचल हो उठता है।
- प्रतीक्षा करने की शक्ति लुप्त हो जाती है।
- क्षण-क्षण मे क्रोध और चिड-चिड करने की आदत बन जाती है।

- प्रतिदिन के आवश्यक काम करने की योग्यता को जग लग जाता है।
- मनुष्य सौ वर्ष जीने लायक उम्र लेकर भी एक ही दिन में उसका आनन्द देखने की महामूर्खता करने लगता है।
- अभी आम लगाकर उसका फल पाने की आकुलता से वह तडफने लगता है, और बजाय फल पाने के वीज को ही नष्ट कर डालता है।

कला की सार्थकता

जीवन मे सफल होने के लिए—सतुलित दृष्टिकोण और विकार रहित हृदय—परम आवश्यक है।

छिद्रान्वेपण करना—मनुष्य की मेधा एव निर्णयशक्ति का विकृत रूप है। केवल दोप देखनेवाला आलोचक हो सकता है, पर कला-पारखी नही। जीवन मे आलोचक से भी अधिक कला पारखी नजर का महत्व है।

एक बार एक सहृदय कलाकार किसी चित्र प्रदर्शनी मे गया। वह एक-एक चित्र की मुक्तकठ से प्रशसा करता जा रहा था। उसी के पास एक आलोचक खडा था, उसने कहा—"आप तो इनकी विशेषता बताने में ही अपनी सारी शक्ति व्यय कर रहे है, आखिर इनके दोष भी वताइए कुछ ?"

कलाकार ने कहा—"हमारी कला की सार्थकता प्रत्येक वस्तु के साधु पक्ष का अबलोकन करने मे है, असाधु-पक्ष की निम्नता ढूढ ने मे नही।"

कला का मूल्य

आज अनेक विचारक कला को सिर्फ कला के लिए मानते है। इन्द्रियो की तृप्ति, मनोरजन और कुतूहल इसी मे कला की सार्थकता

समझ रहे है। पर, वास्तव मे कला का यह सही मूल्याकन नही है। कला, वस्तुत: आत्मा की अमर देन है, उसका उद्देश्य आत्म-तृप्ति, आत्मविकास और आत्मा के अनन्त सौन्दर्य की साक्षात् अनुभूति है।

सामरसेट माम से किसी ने कला के लक्ष्य और उसकी परिणति के सम्वन्ध में पूछा तो माम ने कहा—

'कला न तो जीवन के असुन्दर पर आवरण डालने के लिए है और न बुराइयो से पलायन के लिए ही है, अपितु असुन्दर का निवारण और बुराइयो का सामना करने की शक्ति जुटाने के लिए है। कला जीवन की महामूल्य निधि तभी हो सकती है, जब वह मनुष्य को विनय, सहिष्णुता विवेक और औदार्य आदि गुण सिखाये। कला का मूल्य सौंदर्य में नही, सत्कर्म मे है।"

क्षुद्र दृष्टि

मनुष्य का स्वरूप इतना विराट् है कि उसे सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी कहा गया है, पर उसकी दृष्टि कितनी क्षुद्र है कि वह अपने सिवाय किसी को देखता भी नही ! अपने स्वार्थ मे ही अधा हो रहा है। पास मे खडे इन्सान के सुख-दुख को वह नही देख सकता।

मनुष्य की इस क्षुद्रता पर व्यग्य करते हुए अरब के महान् कवि अवुल अरा ने कहा है—

"खुदा ने इन्सान की दायी आँख के नूर से सूरज और बायी आँख के नूर से चाद वनाया। दुनिया के पैगम्वर इसकी गवाही देते है। मगर सूरज-चाद के साथ जव मैं इन्सान के कारनामो को खोलता हू तो कलेजा फटने लगता है—चाद सूरज की नजरे कितनी व्यापक है, और इन्सान की आखे कितनी सकीर्ण ! कितनी क्षुद्र !"

गुलाव के नाम

—यूराल प्रदेश मे गुलाव को—'गध कुबेर'—कहते है।

चीन मे—'बुद्ध के अधर'

जापान मे—'उषा का पुत्र'

इन्डोनेशिया मे—'प्रणय दूत'

—इटालियन अपनी प्रेयसी को—'मी-रोजा' मेरी गुलाब कहकर सम्बोधन करते है।

मैं सोचता हू कि गुलाब अपने गुणो के कारण ही प्रत्येक देश मे लोकप्रिय हुआ है, वैसे ही मानव भी अपने गुणो के कारण लोकप्रिय हो सकता है।

यथासमय

अनेक बार की कठिनाई और समय की तगी के कारणो पर सोचते-सोचते आज मेरे मन मे एक विचार चमक उठा, और मैंने अपनी डायरी मे नोट कर लिया—जब कोई कार्य हमारे सामने आये और वह आवश्यक हो तो उसे तत्काल पूरा कर देना चाहिए। समय पर आवश्यक कार्य करने से हमारी विचारशक्ति चुस्त एव स्फूर्त रहती है, और अनावश्यक कार्य का भार भी नही बढता।

मुझ एक लेखक की उक्ति बहुत बार याद आती है—"प्रत्येक कार्य को यथासमय करना, और प्रत्येक वस्तु को यथास्थान रखना प्रौढ मानसिक चेतना की निशानी है।"

सार्थकता

"जीवन की सफलता और सार्थकता का पता कब चलता है? एक जिज्ञासु ने पूछा—

"मरने के बाद"—उत्तर मिला! शव यात्रा मे गये व्यक्ति यदि उसकी याद मे दुःख के दो आँसू बहाते है, तो समझना चाहिए निश्चित ही उसका जीवन अपने ध्येय में सफल और सार्थक रहा है। दुनिया उसी को याद करती है जिसने दुनिया के लिए कुछ

किया हो, अपने स्वार्थो के लिए जीनेवालो को ससार कभी याद नही करता।

एक कवि ने कहा है—

जब तुम जनमे जगत मे, जग हसा तुम रोये।
ऐसा काम कुछ कर चलो तुम हंसमुख, जग रोये।

जीवन की सफलता की यह एक कसौटी है।

पुरुषार्थ का हाथ

महाभारत मे एक प्रसग पर बताया गया है—

मनुष्य का हाथ—सर्व सिद्धिदायी है। यह दस अगुलियो वाला हाथ जिसके पास है उसके सब कार्य सिद्ध हो सकते है। धन तो तुच्छ है, उस धन का सर्जक तो हाथ ही है, अत मै हाथ को ही महत्व देता हूं—

अहो सिद्धार्थता तेषां येषा सन्तीह पाणयः।
पाणिमद्भ्यः स्पृहाऽस्माकं यथा तव धनस्य वै।

—महाभारत शाति० १७०।११-१२

यही बात वेद के एक मत्र मे कही है—

अयं मे हस्तो भगवान्

—यह मेरा हाथ ही मेरा भगवान है।

वास्तव मे हाथ मनुष्य के पुरुषार्थ का प्रतीक है। कहावत है—'जिसके पास हाथ है, जगत उसके साथ है।'

मानव जब तुम्हारे पास एक नही, दो हाथ है तो फिर तुम उदास, दीन-हीन होकर क्यो भटक रहे हो ?

कृत मे दक्षिणे हस्ते
जयो मे सव्य आहितः —अथर्ववेद ७।५०।८

—तुम्हारे दाए हाथ मे कर्म है, तो बाए हाथ मे सफलता विराजमान है, बस जुट जाओ अपने कर्म मे।

महाकवि पत कहते है—

कभी न पीछे हटनेवाले ही पाते जय,
बहिरंतर के ऐश्वर्यों का करते संचय।

चार प्रश्न : चार उत्तर

महात्मा विदुर से एक बार चार प्रश्न पूछे गये—जिनका विदुर जी ने बडा ही मार्मिक उत्तर दिया—

प्रश्न—ससार मे जीवित रह कर मृत कौन है ?

उत्तर—जिसने कोई यश का कार्य नही किया।

प्रश्न—आँख रहते हुए भी अधा कौन है ?

उत्तर—जिसने विद्या प्राप्त नही की।

प्रश्न—धनवान होकर भी दरिद्र कौन है ?

उत्तर—जिसने किसी को कुछ दिया नही।

प्रश्न—किसकी दशा सबसे अधिक शोचनीय है ?

उत्तर—जो पुरुष होकर भी कर्मशील नही है।

योग्यता

जिसमे सत्पुरुषो की शिक्षा और हितवचन सुनने की योग्यता नही है, उसे दुर्जनो की गालियाँ और धिक्कार सुनना पडता है।

जो अपना भविष्य स्वय नही देख सकता, उसे सदा अन्धकार मे भटकना पडता है।

जो अपना सहारा स्वय नही बन सकता, उसे तस्वीर की तरह दूसरो के सहारे लटकना पडता है।

समझदारीका रहस्य

किसी विद्वान से मैंने एक दिन पूछा—"आपकी बुद्धिमानी का बड़े-बड़े लोग लोहा मानते हैं, आखिर आपने इतनी बुद्धिमानी कैसे, कहा से प्राप्त की ?"

"मेरी बुद्धिमानी तीन बातो पर टिकी है—विद्वान ने बताया—

१ जो सीख दूसरो को देता हू, पहले स्वय उस पर आचरण करने की कोशिश करता हू।

२ कभी ऐसा काम नही करता और न ऐसी बात कहता, जिसे करने-कहने के बाद पछताना पड़े।

३ अपने सपर्क मे आनेवालो के दोषो की तरफ से सदा आँख मूदकर उनके गुण देखता हू और खुले दिल से उनकी सराहना करता हूं।

मुझे लगा—मानव की सबसे ऊँची बुद्धिमानी और समझदारी का रहस्य इन तीनो सूत्रो मे समा गया है।

देते रहो!

मनुष्य सोचता है "मैं किसी को क्या दे सकता हूँ—मेरे पास तो धन नही है?"

पर क्या धन ही दिया जाता है और कुछ नही? धन तो जड है, वह दो या न दो, किन्तु तुम्हारे पास तो चेतना-रस से आगरित बहुमूल्य सामग्रियाँ पडी है—ज्ञान का अमृत है, अनुभव के मधुर फल है, सद्भावो की सीख है, प्रेम का सागर है, और हँसी के फूल हैं—और इनकी कोई कीमत नही लगती। फिर सोचते क्या हो? देना शुरू करो, देते जाओ! जैसे-जैसे दोगे, तुम्हारी समृद्धि बढेगी, कीर्ति फैलेगी, ससार तुम्हारा चिरऋणी रहेगा।

मानव! अपनी इस अमूल्य थाती को बाटना शुरू कर दो, निरन्तर देते रहो। तुम देकर कृतार्थ बनोगे, लेनेवाला भी लेकर कृतार्थ होगा—कैसा आनद है इस लेने-देने मे!

स्वार्थ-परमार्थ

अपने लिए अपना त्याग—स्वार्थ है और दूसरो के लिए अपना त्याग—परमार्थ है, बलिदान है। भारत की सस्कृति बलिदान की

सस्कृति रही है। यहाँ व्यक्ति परमार्थ के लिए अपना वलिदान करके भी अपूर्व आनन्द और स्फूर्ति का अनुभव करता रहा है, जीवन देकर भी अमरत्व का लाभ प्राप्त करता रहा है।

गुजरात के मुख्य न्यायाधीश श्री दीवान ने अपने जीवन मे लगभग साठ बार रक्तदान किया। एक विदेशी पत्रकार ने उनसे पूछ—"रक्तदान के बाद आपको कुछ क्लाति महसूस नही होती ?"

श्री दीवान ने मुस्कराकर कहा—"नही ! मेरे देश मे लोगों ने अक्लात भाव मे अपना हाड-मॉस तक दे डाला है। इन पूर्वजो की परम्परा क्या मुझे नही निभानी चाहिए ?"

समस्या

कुछ लोग उदासी मे डूबे, रोनी सूरत लिए कहते है, "क्या करे, बडी कठिन समस्या है।"

मै सोचता हूँ, समस्या तो स्वय ही कठिनाई का नाम है, फिर उसके पीछे 'कठिन' शब्द लगाकर उसे और गहरी क्यो बनाई जाती है ? यदि कठिन न होती तो वह समस्या ही न होती।

समस्या को, समस्या के रूप मे ही देखना चाहिए, उसके साथ अधिक कठिनाई का अनुभव हमारी अन्तर चेतना को दीन-हीन वना देगा और समस्या सर पर चढ जायेगी।

समस्या का समाधान वही कर सकता है, जो उसे सरल वनाना जानता है ।

चेहरा

एक अनुभवी विचारक का कहना है—

वीस वर्ष की आयु मे व्यक्ति का चेहरा प्रकृति की देन है।

तीस वर्ष की उम्र का चेहरा-उसकी जिंदगी के उतार-चढाव को देन है।

पचास वर्ष की उम्र का चेहरा व्यक्ति के अपने अनुभवो का प्रतिविम्ब लिए होता है।

और साठ वर्ष के वाद का चेहरा उसके जीवन की कृतकृत्यता एव पञ्चात्ताप की स्पष्ट झलक देने लगता है।

मितव्ययिता

मितव्ययिता का अर्थ पेट पर पत्थर बाँधना या फटेहाल घूमना नही, किन्तु वर्तमान के सुख के साथ भविष्य सुख की व्यवस्था का विचार करके चलना है।

वस्तु के दुरुपयोग से वचना और अधिकाधिक सदुपयोग का प्रयत्न रखना ही सच्ची मितव्ययिता है।

बीज और फल

विचार जब तक मन मे रहता है तब तक वह 'बीज' है। विचार जब कर्म मे साकार हो जाता है तो वही 'फल' बन जाता है।

सकल्प के वीज की अपरिमित शक्ति का अनुमान उसके कर्मरूप मे फलित होने पर ही लग सकता है।

परोपकार

जो व्यक्ति परोपकार के लिए अपना सर्वस्व निछावर कर डालता है, वह सब कुछ देकर भी सब कुछ पा लेता है, उसका दान कभी उसमें रिक्तता नही आने देता, किन्तु जगत की रिक्तता भरने के साथ-साथ दाता को भी पूर्ण भरता रहता है।

गुजराती कवि 'खबरदार' ने कितनी मार्मिक भापा मे कहा है—

> सिंधु दे वारि निज शोशवा सूर्य ने,
> ने सदा उछडतो मोज मारे।
> मेघ आपी बधूँ खाली पोते थतो,
> तोय पाछो गगन गाजी उठे।

सूर्य सर्वस्व आ जगत ने आपतो,
रेलतो त्याज प्रभु नी प्रभावी।

समुद्र यद्यपि सूर्य को अपना पानी सोखने देता है, फिर भी वह मौज से उछलता है। देनेवाला देकर मुक्त हो जाता है। मेघ जल बरसा कर खाली हो जाता है, फिर भी वह आसमान में चढकर गरज उठता है। सूर्य अपना सर्वस्व जगत् को दे डालता है, फिर भी वह प्रभु के प्रकाश से चमकने लगता है।

ज्ञान-कसौटी

मनुष्य के अधिकांश दुख--भय की उपज है।
अधिकांश भय—दुर्बल मन की उपज है।
अधिकांश दुर्बल मन—अज्ञान की उपज है।

जौहरी जिस प्रकार सजग भाव से हीरे-जवाहरात को परखता है, व्यापारी जिस प्रकार सतेज आँखों से वस्तु को परखता है—उसी प्रकार आप अपने मन की, अपने अन्तर्द्वन्द्वों की 'ज्ञान कसौटी' कीजिये, उन्हें वास्तविक दृष्टि से परखिये- आप शीघ्र ही उन पर काबू पालेंगे। भय नष्ट हो जायेंगे, क्योंकि मन सबल बनेगा, और मन सबल तब बनेगा, जब ज्ञान का आलोक जगमगा उठेगा।

वह धर्म क्या ?

वह दर्शन क्या, जो हमारे अन्त करण को नही जगा सके। वह धर्म क्या, जो हमारे मूर्च्छित जीवन को अपने अमृतस्पर्श से सजीवन नही दे सके। उससे तो कवि की वे कोमल कल्पनाएँ अच्छी, जो हमारे सुप्त मन को सहला सके, वे सुनहले स्वप्न ही अच्छे, जिनके ताने-बाने पर जिन्दगी के कुछ मधुर मनोरथ बुने जा सके।

दो सूक्तियाँ

फ्रांस के महान् कलाकार पालगोगाँ का जीवन पढ रहा था,

जीवन और जगत के चित्रण में उसकी तूलिका जितनी तेजस्वी रही है, उसकी वाणी भी उससे कम तेजस्वी नही। उसकी दो सूक्तियोने मेरे चितन को उद्वेलित कर डाला—

"आदमी का जीवन कितना छोटा है, तो भी इसमे इतना समय है कि बडा-से-बडा काम किया जा सके।"

"तुम सभ्य हो न ? इसीलिए आदमी का मास नही खाते ! पर, इसके बदले सदा पड़ोसियो का हृदय खाते रहते हो, फिर भी तुम सभ्य हो !"

आनन्द

जीवन आनन्द की क्रीड़ाभूमि है, मन आनन्द की खान है।

जिसका पेट खराब है—उसके लिए सभी मिष्टान्न जहर की गोलियाँ है।

जिसका मन कु ठित है—उसके लिए सभी आनन्द के साधन पीड़ाकारक दश है।

जिसके जीवन मे आनन्द नही—उसके लिए सभी उपदेश निरर्थक प्रलाप है।

दुष्टसंकल्प बनाम राक्षस

उपासगदशा सूत्र मे एकवर्णन पढ रहा था—"अमुक श्रावक को कष्ट देने के लिए वे अमुक देव ने विकराल पिशाच का रूप धारण किया।"

इस प्रकार के अन्य वर्णन भी आगमो मे आये है। इन पर जव सोचने लगा तो एक विचार मन मे उभर उठा—देव, देव रूप में किसी को कष्ट नही पहुचाते, जव किसी को कष्ट देने का सकल्प मन मे उठता है तो देव भी राक्षस रूप मे व्यक्त होता है।

मानव भी मानव रूप मे किसी का कोई अहित नही कर सकता

दूसरे के दुस्संकल्प जब मानव मन मे जन्म लेते है तो मानव दानव रूप मे प्रकट होता है ।

सच है, क्रोध, हिंसा आदि के सकल्प राक्षस है, इनके कारण से देव एव मानव भी अपना देवत्व एव मानवता खोकर राक्षस बन जाता है ।

सज्जन-असज्जन का अन्तर

जिन फूलो से मधुमक्षिका मीठा मधु ग्रहण करती है, मैंने देखा —उन्ही फूलो से मकडी जहर लेकर ससार के लिए विषैले जाल बुनती है ।

विवेकी एव अविवेकी, सज्जन एव दुर्जन मनुष्य के स्वभाव मे यही अन्तर है ।

सेवक के हाथ स्वामी की हत्या

मैने सुना है—"एक राजा ने अपनी रक्षा के लिए एक शिक्षित बदर रखा । वदर हाथ मे नगी तलवार लिए चौबीस घटा पहरा करता और राजा की रक्षा के लिए खडा रहता । एक बार राजा सोया था, मु ह पर मक्खियाँ बैठने लगी, बदर ने झु झलाकर तलवार का प्रहार किया । मक्खिया उड़ गई और राजा की धड कट कर अलग गिर पड़ी ।"

मैं आज देख रहा हू—मानव ने अपनी रक्षा के लिए विज्ञान रूप वदर के हाथ मे अणुशक्ति को तलवार दी है । हाय ! आज उसी तलवार से वह मानवता की रक्षा के नाम पर उस पर प्रहार कर रहा है । अपने सेवक के हाथ स्वामी मारा जा रहा है, विज्ञान के हाथ मानवता का गला काटा जा रहा है ।

अपनी-अपनी योग्यता

कोयले ने हीरे की तरफ ईर्ष्या से देखकर कहा—भाई ! तुम

और हम एक ही मा के गर्भ मे साथ-साथ रहे, पैदा हुए, किंतु फिर भी तुम्हारे और हमारे मूल्य मे, वर्ण मे और तेज मे जमान-आसमान का अन्तर कैसे आ गया....?

हीरे ने उत्तर दिया—स्थान और माता-पिता एक होने से क्या हुआ, योग्यता तो अपनी-अपनी होती है। तुमने जिन अणुओ से कालिमा और निस्तेजता ग्रहण की, हमने उन्ही अणुओ से उज्ज्वलता और तेजस्विता प्राप्त करली। इसीकारण तुम जलाये जाते हो, और हम पहने जाते हैं।

ज्योतिर्मय जीवन

मानव ! नीले आकाश मे चमकते हुए चन्द्रमा को देखो ! उसके जीवन के उतार-चढाव को समझो ! शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष का अर्थबोध ग्रहण करो !

तुम शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की तरह जीवन मे प्रतिदिन सद्‌गुणो की वृद्धि करते रहो। और कृष्णपक्ष के चन्द्रमा की भाँति दुर्गुणो को प्रतिदिन क्षीण करते चले जाओ ! तुम्हारा जीवन ज्योतिर्मय बना रहेगा !

दो तरह के मनुष्य

ससार मे दो तरह के मनुष्य होते है—एक बदर की तरह एक पक्षी की तरह !

बदर वृक्ष पर बैठा है, भूकम्प या तूफान से वृक्ष हिलने लगता है तो बदर अपनी पकड गहरी करके उससे चिपट जाता है। वृक्ष यदि गिर पडता है तो बदर भी उसके नीचे दब जाता है, पर वह भय के मारे वृक्ष को छोडता नही !

पक्षी भी वृक्ष पर बैठा है, किंतु जब वृक्ष हिलने लगता है तो

भय आया देखकर पक्षी वृक्ष को छोडकर उड जाता है, और कही सुरक्षित स्थान पर आश्रय लेता है।

कुछ मनुष्य बदर की तरह धन, सपत्ति एव भोगो से चिपटे रहते है। भोगो को छूटते देखकर वे अपनी पकड़ और गहरी कर लेते हैं। और कुछ मनुष्य पक्षी की तरह उनका त्याग कर धर्म का आश्रय ग्रहण कर लेते हैं।

विद्वान और सत

ससार मे कोहोनूर हीरा सबसे अधिक मूल्यवान माना जाता है, और उससे भी अधिक मूल्यवान है 'क्युलिनन' नामक हीरा। आज क्युलिनन का मूल्य कई करोड पौड मे आका गया है।

कितु उस क्युलिनन से भी अधिक मूल्यवान सूर्य की एक किरण है। क्युलिनन न रहेगा तब भी ससार यो का यो चलेगा ! पर सूर्य की किरणे न रहे तो ? संसार का जीवन अस्तव्यस्त ही नही, कितु असभव भी हो जायेगा। कितु वह सर्व सुलभ है, इसलिए मानव ने उसका मूल्य नही समझा !

ससार मे बडे-बडे विद्वान, डाक्टर, वैज्ञानिक कोहीनूर और क्यूलिनन की भाति मूल्यवान हो सकते हैं, किंतु सच्चे सत सूर्य किरण की भाति जग के लिए उनसे भी अधिक मूल्यवान है। विद्वान न रहे तो ससार चल सकता है, किंतु सत न रहे तो ससार को मार्ग कौन दिखाएगा। हा सूर्यकिरण की भाति सत सर्वजन सुलभ है, इसलिए मूढ मानव ने उनका सही मूल्य नही समझा !

बस, एक मिनट

जो मनुष्य क्षण का कोई महत्व नही समझता, वह जीवन का क्या महत्व समझेगा ?

कण का मूल्य करनेवाला ही मण का मूल्य समझ सकता है,

विंदु का रूप समझनेवाला ही सिंधु को सत्ता का अनुभव कर सकता है ।

भगवान महावीर ने कहा है—

खण जाणाहि पडिए !

—हे पंडित ! बुद्धिमान ! क्षण का महत्व समझो !

असख्य क्षणो की परपरा ही तो जीवन है, यदि एक-एक क्षण निरर्थक खो दिया तो समूचा जीवन ही व्यर्थ चला जायेगा ।

मैने सुना है—एक भाई स्टेशन पर गाडी के समय से एक मिनट विलव से पहुचे, वस जब तक वे प्लेटफार्म पर पहुचे तब तक गाड़ी छूट गई । वे आश्चर्य से खडे देखते रहे, फिर कह उठे—वस, एक मिनट लेट हो गया । पास ही खड़े किसी विचारक ने हसकर कहा—"बस ! एक मिनट !"

यात्री ने घूरकर उस ओर देखा, वह उसे ही कह रहा था—एक मिनट की भूल, एक मिनट का विलव समूचे जीवनक्रम को अस्त-व्यस्त कर डालता है । जीवन मे एक मिनट वहुत ही मूल्यवान होता है ।

स्वस्थ-चिंतन की प्रक्रिया

स्वस्थ मनुष्य जो भोजन करता है, उसके भोजन का एक अश रस रूप मे परिणत होता है, रससे धातु वनती है, और फिर धातु शरीर को शक्ति एव ओज प्रदान करती है । भोजन का एक दूसरा अश जो निस्सार होता है, शरीर उसे मलरूप वनाकर वाहर निकाल देता है । इस प्रकार स्वस्थ शरीर सार को रखता है, असार को फेंक देता है ।

हमारे स्वस्थचितन की भी यही प्रक्रिया होनी चाहिए । हम जो कुछ पढते है, देखते है, ग्रहण करते है, उसमे जो सार रूप है, जो सत्य, पथ्य एव तथ्य है, उसे जीवनीशक्ति रूप मे परिणत करना

चाहिए, और सारहीन, अशुद्ध एव अनुपयोगी विचारो को मन से निकालकर मस्तिष्क को हलका एव स्वच्छ वना लेना चाहिए।

युद्ध और शाति

मनुष्य शाति की पुकार जरूर करता है, किंतु उसका स्वभाव मूलत युद्धप्रिय रहा है। युद्ध एव सहार मे वह जितनी शक्ति लगाता रहा है, यदि निर्माण में उससे आधी शक्ति भी लगाता तो मानव जाति दरिद्रता, भूख एव रोगो से काफी हद तक मुक्त हो सकती थी।

अर्थशास्त्रियो का कथन है कि द्वितीय विश्वयुद्ध हुआ—उसमें साठ हजार अरव रुपए खर्च किये गये। लाखो आदमी युद्ध के मैदान मे मारे गए और करोडो घायल होकर जीवन से निराश होगए। यदि उन रुपयो को ससार की कुल आवादी २ अरव जनता मे वाटा जाता तो प्रत्येक व्यक्ति को ३० हजार रुपये मिलते। यदि चार व्यक्तियो का एक परिवार माना जाय तो प्रत्येक परिवार को १ लाख २० हजार रुपये मिलते। जिससे हर परिवार के पास रहने का मकान होता और सुख पूर्वक वह अपना जीवन चला सकता। जव हर कुटुम्ब सुखी वन जाता तो ससार में अशाति, झगडे, चोरी एव हत्याएँ आदि वहुत कम हो जाती और लम्बे समय तक पुन युद्ध की सभावना नही रहती।

भाग्य का चमत्कार

जैन पुराणो मे एक उक्ति प्रसिद्ध है—"भाग्यं फलति सर्वत्र" मनुष्य का भाग्य ऐसा वृक्ष है जो हर ऋतु मे, और हर क्षेत्र मे फल सकता है, उसका कोई पता नही चलता, कव, कैसा फल देता है! भाग्य ने काले नाग को फूलो का हार वना दिया, जहर के फलो को अमृत सा मधुर वना दिया। ऐसी अनेक आख्यायिकाए जैन पुराणो मे प्रसिद्ध हैं।

अभी कुछ दिन पूर्व सुना कि यूरोप में एक महिला ने एक लकड़ी का घोडा, जो नीलाम हो रहा था, १० सिलिग (७।। रुपये) में खरीदा। जब घर आकर उसने उसका ढक्कन खोला तो उसमे दो हजार पौड (३० हजार रुपए) के नोट मिले।,

भाग्य विपरीत होता है तो घर आई लक्ष्मी भी चली जाती है। चीन मे एक मजदूर के नाम लाखो रुपये की लाटरी का पहला इनाम निकला। उसे ज्ञात हुआ तो वह खुशी मे नाच उठा। खुशी-खुशी मे उसने लाटरी का टिकट भी फेंक दिया - सोचा, इनाम तो निकल ही गया। दूसरे दिन जब वह इनाम पाने गया, और टिकट माँगा गया तो उसने वताया—टिकट तो उसने वही खो दिया है। बस, हाथ मलता हुआ विचारा लौट आया। सिर पीटने लगा।

भाग्य अनुकूल रहने पर अचानक सपत्ति मिल जाती है तो प्रतिकूल होने पर आई हुई लक्ष्मो चली भी जाती है। यह सब है भाग्य का चमत्कार।

वक्ता का गुण

जैनसूत्रो मे वक्ता के लिए तीन गुण वताए गये है—"**हित-मित-शिष्टवचन**" वक्ता हित की वात कहे, शिष्ट व मधुर वचन बोले किंतु साथ मे सक्षिप्त—परिमित शब्दो मे ही अपनी वात कहे।

वाणी के अन्य गुणो मे सक्षिप्त—मित-भाषण सर्वाधिक महत्व-पूर्ण गुण है।

कहते है, दक्षिण अफ्रीका की जन-जातियो मे एक रिवाज था कि भाषण देनेवाला व्यक्ति एक पाव पर खडा होकर बोलता था। इसका एक लाभ यह भी रहा होगा कि वक्ता बहुत ही सक्षिप्त मे शीघ्र अपने विचार रखकर श्रोताओ को सार की बात समझा देता।

आज के दो-दो-तीन-तीन घटा तक वोलते जानेवाले वक्ताओ के लिए यह बात सीखने जैसी है।

गरीब और श्रीमन्त

एक कहावत है—श्रीमन्त का घर बड़ा होता है, पर दिल छोटा होता है। गरीब का घर छोटा होता है, किंतु दिल बडा ! एक फटी दरी पर ५० गरीब व्यक्ति बडे प्रेम से बैठ सकते है, किंतु एक विशाल सिंहासन पर दो राजा नही बैठ सकते।

एक गरीब आदमी अपनी एक रोटी में से आधी रोटी अपने गरीब भाई को दे सकता है, किंतु एक श्रीमत अपनी मिष्टान्न से भरी थाली मे से एक कौर भी किसी को देना नही चाहता।

गरीब अपनी एक रुपये की कमाई मे से भी मन्दिर, मस्जिद और धर्म-पुण्य के लिए कुछ दे देता है, किन्तु श्रीमंत लाखो करोडो रुपयो मे से भी देने मे मुंह छिपाता है।

गरीब के अनुपात मे यदि धनी लोग उदार और दानी बन जाय तो ससार मे कही गरीबी की पीडा ही न रहे, और न ही युद्ध की भीति।

लक्ष्य के लिए

दीपक पर मडराते हुए एक लघुशलभ को देखकर प्रणयाकुल व्यक्ति ने कहा—"देखो ! शलभ की प्रेम-पिपासा ! अपने प्रेमी के लिए प्राण न्यौछावर करने के लिए कैसे मचल रहा है ?"

एक उदासीन विरागी ने कहा—"यह तो निरी मूढता है ! रूप-मुग्ध मानव की तरह यह भी दीपक की लौ पर मुग्ध बना प्राणो से हाथ धोने जा रहा है।"

दोनो की बात सुनकर एक वीर साधक बोला—"प्रेम और मोह की भाषा तो तुम्हारी है। शलभ को इससे क्या लेना देना ? यह तो अपने लक्ष्य मे समा जाने के लिए मचल रहा है। इसके सामने प्राणो का नही, लक्ष्य का ही मूल्य है।

समझौता

हार जीत मनुष्य के अहकार का प्रतीक है, किंतु समझौता, और सधि यह उसकी बुद्धिमानी का चिन्ह है।

हार-जीत का प्रश्न पशुओ में भी खड़ा हो जाता है, किंतु वहा समझौता जैसी कोई कल्पना नही हो सकती।

दो बैल, भैंसे, मैंढे या कुत्ते परस्पर लडते-झगडते लहु-लुहान हो जाते है, दमतोड़ देते है, या मैदान छोडकर भाग जाते हैं, किन्तु समझौता करके शाति से निबटने की बात उनके दिमाग में नही आती।

समझौता मनुष्य की बुद्धि की उपज है। जो मानव युद्ध में, झगड़े मे समझौता की भाषा नही जानता उस मानव में और पशु में क्या अन्तर है....?

स योगी ह्यथवा पशुः ?

बालक को देखकर जिसके मन में स्नेह नही उमडता हो, मित्र को देखकर जिसके मन मे प्रीति नही उमडती हो, दुखी को देखकर जिसके मन मे करुणा नही छलकती हो, माता-पिता को देखकर जिसका मस्तक आदर से झुक नही जाता हो और गुरुदेव को देखकर जिसका हृदय भक्ति मे हिलोरे न लेने लगता हो वह—"**स योगी ह्यथवा पशुः**—" या तो परम योगी होगा अथवा निरा पशु!

नेतृत्व के दो गुण

एक इजन जैसे पचासो डिब्बो को लेकर चल सकता है, वैसे ही एक दृढ़सकल्पी व्यक्ति हजारो मनुष्यो को अपने पीछे लेकर आगे बढ सकता है।

समाज का नेता, इजन की तरह होता है, जो सिर्फ अपनी शक्ति पर भरोसा रखता है, किंतु ध्यान सब का रखता है। कही भी गड-

वड हुई तो वह उसे सुधारे बिना आगे नही चलता ।

इजन की भाति नेतृत्व मे अपना साहस, और अनुगामियो के प्रति वात्सल्य दोनो गुण अनिवार्य है ।

वातावरण

यदि तुम धूप मे बैठे हो तो उसकी उष्णता से कैसे वच सकोगे ?

यदि अग्नि के समक्ष बैठे हो तो उसके ताप से कैसे बच सकोगे ?

इसी प्रकार यदि क्रोध और वैमनस्य के वातावरण में जी रहे हो, तो उसके उत्ताप और बेचैनी से कैसे बच सकोगे ?

पानी के किनारे पर एव वृक्ष की छाया मे बैठनेवाला जैसे शीतलता एव शाति अनुभव करता है, वैसे ही क्षमा एव विरक्ति के वातावरण मे पलनेवाला सदा शाति एव प्रसन्नता अनुभव करता है ।

तारक भी मारक भी :

सत्ता, शक्ति और सपत्ति-तारक भी है और मारक भी ।

जैसे दियासलाई से अग्नि प्रज्वलित कर खाना भी पकाया जा सकता है और आग लगाकर विनाश भी किया जा सकता है, वैसे ही सत्ता, शक्ति एव सपत्ति का सदुपयोग कर समाज एव देश का गौरव भी वढाया जा सकता है तथा उनका दुरुपयोग कर प्रतिष्ठा पर पानी भी फिराया जा सकता है ।

मिट्टी के समान बनो !

कुछ व्यक्ति मिट्टी की तरह होते है, वे किसी भी उपदेश या शिक्षा को अपने भीतर उतार कर सत्कर्म के नये नये अकुर पैदा कर जीवन को सरसब्ज बना लेते है ।

कुछ व्यक्ति पत्थर के समान हृदयवाले होते है, उन्हे चाहे जितना उपदेश सुनाया जाय, किंतु पत्थर की तरह हमेशा सूखा और वीरान ही वना रहता है ।

मित्र ! तुम अपने हृदय को पत्थर के तुल्य नही, मिट्टी के समान वनाओ !

खाने के तीन रूप :—

ससार में खाते तो सभी है, पर खाने की कला कितने जानते है ? जब तक खाने का उद्देश्य, खाने का तरीका, और खाने का विवेक-स्पष्ट नही हो जाता, तव तक खाने की कला नही आ सकती, और खाना-चरना मे कोई भेद नही किया जा सकता !

भोजन-कला की दृष्टि से मनुष्य के तीन भेद हैं—

एक—जो खाते है, खाने के लिए ही खाते है, दिन में भी, रात मे, पथ्य भी, अपथ्य भी, भक्ष्य भी अभक्ष्य भी " उनके खाने में कुछ भी विवेक नही होता, खाने का कोई तरीका नही होता और न कोई उद्देश्य होता है, उनका खाना 'चरना' है, पशु की भाति उनका आहार है !

दूसरे—जो खाते है वे स्वाद के लिए खाते हैं। स्वाद के लिए स्वास्थ्य को चौपट कर देने मे भी उन्हे कोई आपत्ति नही ! भूख हो या न हो, स्वादिष्ट वस्तु पर भूखे भेडिये की तरह टूट पड़ते है। उनका खाना मात्र स्वाद के लिए है।

तीसरी श्रेणी के जो मनुष्य खाते हैं, वे न खाने के लिए खाते है, और न स्वाद के लिए, उनका एकमात्र उद्देश्य होता है—जीवन धारण ! शरीरधारण के लिए ही वे खाते हैं, आवश्यकता होने पर ही खाते है, और वही खाते है जो शरीर के लिए हितकारी, पथ्यकारी, बलकारी और निर्दोष हो। उनका खाना साधना के लिए है। इसलिए उनका भोजन पवित्र होता है।

सोना सो ना ?

जैसे-जैसे मनुष्य के पास धन वढता है, वैसे-वैसे चिन्ताएँ भी वढ़ती जाती है। आज वड़े-बड़े धनिको, और उद्योगपतियो को

प्राय अनिद्रा का रोग सता रहा है। वे न दिन में आराम से खाना खा सकते है और न रात मे सुखपूर्वक सो सकते हैं।

सोए भी कैसे ? जो सोना उनके पास जमा हो रहा है वह तो नही सोने का ही सदेश दे रहा है। सोना कहता है—"तू मेरी रक्षा कर ! सो ना ! नीद मत ले !"

जब सोना का अर्थ ही है—'सोना; सो-ना' तो फिर नीद कहा !

जीवन-चित्र

जैसे चित्रकार अपने चित्र को सुन्दरतम बनाने के लिए प्रकृति की प्रत्येक वस्तु का सूक्ष्मता के साथ निरीक्षण करता है, और उसकी विशेषताओ को तूलि के द्वारा चित्रित करने का प्रयत्न करता है, वैसे ही अपने जीवन चित्र को नये-नये भावो और प्रकारो से सुसज्जित करने के लिए जगत श्रेष्ठ एव सुन्दर गुणो को अपनाते रहो।

चित्र की तरह जीवन मे भी नये भाव चमकने चाहिए। चित्र की तरह जीवन मे भी मधुर एव प्रभावशाली रग निखरने चाहिए।

कष्टो से भागो मत !

मैंने एकदिन देखा—अग्नि की ज्वालाए धधक रही है, आस-पास मे पडा घास-पात, ईंधन और उपले—भारे भय से काप-काप उठे। ज्वाला से डर कर जान बचाने के लिए वे इधर-उधर भागने की सोचने लगे, पर तभी ज्वाला की एक लपट ने उन सबको घेर लिया और क्षणभर में भस्मसात् कर डाला।

मैंने देखा—अग्नि के निकट ही एक स्वर्ण-पिंड पडा हस रहा था। अग्नि की तीव्र ज्वालाओ ने उसे ललकारा, और स्वर्ण-पिंड उससे सघर्ष करता हुआ अग्नि के भीतर जा छुपा। किंतु कुछ ही क्षण बाद मैंने देखा कि सोना अब पहले से भी अधिक तेजस्वी और चमकदार है।

मैंने अनुभव किया—जो कष्टो से घबराकर भागते है, कष्ट उन्हे

खा जाते है। किंतु जो साहसपूर्वक कष्टो का सामना करता है कष्ट उसके जीवन को और अधिक ज्योतिर्मय वना देते हैं।

वालक का मन

वालक का मानस काँच की सफेद शीशी है। शीशी में जिस रग का पानी भरोगे, शीशी का वही रग प्रतीत होगा। वालक के मन में भी जिसप्रकार के सस्कार भरोगे, वे ही सस्कार उसके जीवन में प्रकट होगे।

घट की आत्मकथा

एक बार मैंने घट से कहा—"घट! तुम कितने भाग्यशाली हो, जो रमणियो के सिर पर चढते हो, जीवनदायी जल को धारण करते हो, और प्रत्येक शुभ कार्य में तुम मांगलिक रूप में उपस्थित होते हो।"

घट ने हसकर कहा—"वन्धु! यह तो मेरा अतिम रूप है! इस रूप में आने तक मैंने सकटो की कितनी घाटियां पार की है, इसकी भी कल्पना है कुछ? पहले मैं मिट्टी था, कुम्हार ने मुझे खोदा, पीटा, पानी में डाला, पावो से कुचला, फिर रोद-रोद कर मेरा पिंड वनाया, फिर चक्र (चाक) पर चढाया, डोरे से मेरा शिर काट कर धूप मे सुखाया, फिर भट्टी में पकाया—इतने सव सकट सह चुकने के वाद आज मे जलधारण के योग्य वना हूँ और मेरे दर्शन मगलमय माने जाते हैं।

मैंने सोचा—सच है घट की आत्मकथा! यदि मानव इससे आधे कष्ट भी सहन करले तो क्या वह भी घट जैसा पात्र और मगलमय स्वरूप नही वन जायेगा? पर मैं देखता हूँ मिट्टी का घट भी सहे विना योग्य नही वन सकता, किंतु मानव विना कुछ कष्ट सहे ही सव कुछ वनना चाहता है।

सम्मान कैसा ?

एक इतिहासकार ने बताया है—"फीजियन जाति के मानव मनुष्य की हत्या करने मे गौरव का अनुभव करते थे। एक दूसरी जाति है—टर्कोपेन ! उस जाति मे चोरी करनेवालो का सम्मान होता था। जो जितनी बडी चोरी करता उसका उतना ही बडा सम्मान किया जाता। विशिष्ट चोरी करनेवाले को तो लोग विशेष सम्मान देते। मरने के बाद तीर्थस्थान की तरह उसकी कब्र की पूजा करते !"

इतिहासकार की इस बात को पढकर मुझे आश्चर्य हुआ, पर जरा गहरा उतरकर आज के समाज के अन्तस्तल मे झाका तो लगा, आज भी तो यही हो रहा है।

आज जो सबसे अधिक झूठ बोलकर, बडी-बडी चोरी करके, न्याय और सत्ता की आँखो मे धूल झोककर धन कमाता है—क्या समाज उसको प्रतिष्ठा नही देता ? आज त्यागी की नही, पैसे वाले की पूजा होती है। सत्यवादी की नही, किन्तु सत्य का नाटक करने वाले को प्रतिष्ठा मिलती है ! मैं सोचता हूँ प्राचीन जातियो के उस सम्मान मे और आज के सम्मान मे क्या अन्तर है .. ?

दुधारु गाय

दूध देनेवाली दुबली गाय की भी लोग सेवा करते है, किन्तु मोटी ताजी बाझ गाय को भी कोई घर मे बाधना नही चाहता।

धर्म को जीवन में उतारने वाला गरीब और हीन जाति वाला भी ससार मे प्रभु का प्यारा बन सकता है, किन्तु सुन्दर धनवान और आचारहीन को प्रभु तो क्या, प्रभु के भक्त भी नही चाहते।

एक विचारक ने कहा है—"क्रियावान साधक दुधारु गाय और क्रियाहीन पडित बाझ गाय के समान है।"

उसी को····

ससार मे अमरता उसी को मिल सकती है, जिसने मरने की कला सीखली हो।

ससार में मान उसी को मिल सकता है, जिसने मान का त्याग कर दिया हो।

ससार मे नाम उसीका हो सकता है, जिसने नाम के पीछे दौडना छोड दिया हो।

निष्ठा-प्रतिष्ठा

आज के मानव में अपने कर्तव्य के प्रति निष्ठा की कमी होती जा रही है और प्रतिष्ठा की भूख विकराल वन रही है। किन्तु निष्ठा नही होगी, तो प्रतिष्ठा कैसे मिलेगी ?

जहां निष्ठा होगी वहां प्रतिष्ठा स्वयं आयेगी।
जहां सिद्धि होगी, वहां प्रसिद्धि दौड़ी आयेगी।

बुद्धिहीनता

मैंने देखा—हरे-भरे वृक्षो की डालियो पर कुछ पक्षी बैठे आनन्द मे झूम रहे थे, मस्ती के साथ वह चल रहे थे। अचानक ही कही पर गोली का एक धमाका हुआ। पक्षी भयभीत हो गये और पख फर-फराकर आकाश की ओर उड गये।

मैं सोचने लगा—अज्ञान और विवेकहीन कहे जाने वाले पक्षी में भी इतनी वुद्धि है कि वह भय को सामने देखकर पहले ही सावधान हो जाता है। और मनुष्य ! रोज अपनी आँखो के सामने चिताएँ जलती देखता है, फिर भी मौत को अनदेखी कर रहा है ! क्या यह पक्षी से भी अधिक वुद्धिहीनता नही है ?

अति न बनो

जीवन मे न वहुत अधिक मधुर वनो और न वहुत अधिक कटु। दोनो ही अति त्याज्य है।

एक वार गुड से किसी ने कहा—गुड़ ! तुम वहुत मीठे हो, जो भी देखता है चखने का मन होता है।

गुड ने लवी सास लेकर कहा—तभी तो लोग मुझे चट कर जाते हैं। जो देखे वही चाट जाता है।

नीम ने किसी से कहा—नीम ! तुम वहुत कडवे हो।

नीम ने उत्तर दिया—तभी तो, जो मुझे चखता है वही थू-थू करने लग जाता है।

दोनो का उत्तर सुनकर कवि ने कहा—

मीठा गुड़ न वन, जो चट कर जाये भूखे।
कड़वा नीम न वन जो चखे सो थूके।

निर्माण और विध्वंस

जीवन मे निर्माण प्रिय है, विध्वस नही ! किंतु निर्माण एव नव-सर्जन के लिए किया गया विध्वस भी मनुष्य सह सकता है—निर्माण की आशा मे।

दर्जी सुन्दर मूल्यवान वस्त्रो पर कैंची चलाता है, काट-काट के रख देता है, वढई मूल्यवान लकडी को छील कर टुकडे-टुकड़े कर अलग-अलग कर देता है, और नाई उन चिकने काले-वालो को, जिन्हे मनुष्य सजा सवार कर रखता है, कैंची से काट-काट कर गिरा देता है, फिर भी दर्जी का वस्त्र काटना, वढई का लकडी चीरना और नाई का केश काटना, सबको अच्छा लगता है, क्योकि उसके साथ नये आकार-प्रकार की, नव सर्जना की कल्पनाएँ साकार होने लगती है। सर्जन-मूलक सहार, निर्माण-मूलक विध्वस, और पोपण-प्रधान शोपण, जीवन और जगत को नया रूप प्रदान करते हैं।

अधिकार को धिक्कार

सस्कृत के किसी प्राचीन कवि का एक सुभाषित है—

अधिकारपदं प्राप्य नोपकारं करोति यः।
अकारो लुप्यते तत्र ककारो द्वित्वतां व्रजेत्!

—जो मनुष्य किसी अधिकार को पाकर भी पर-उपकार नही करता है, उसके अधिकार मे से 'अ' निकल जाता है, और 'क' दुहरा हो जाता है, अर्थात्-'अधिकार-धिक्कार' बन जाता है।

जो सत्ता और अधिकार का दुरुपयोग करता है, वह वास्तव मे ही ससार की नजरो मे धिक्कार का पात्र है। शताब्दियो तक उसके नाम पर लोग थूकते है, इतिहास सदा उसे मिट्टी के मोल तोलता है।

नेपोलियन बहुत बड़ा वीर था, अनेक गुण भी उसमे थे, किन्तु उसने सत्ता के लिए जो लाखो मनुष्यो का खून बहाया—क्या इतिहास उसे बख्श देगा?

महान् तत्त्ववेता इगरसोल जो निर्भीक होकर सदा कडवे से कडवा सत्य कह देता था, एकबार नेपोलियन की कब्र के पास पहुंच गया। कब्र मे सोया नेपोलियन अपने नरसहारक रूप मे जैसे उसकी आँखो के सामने खड़ा हो गया। इगरसोल उठा, और उसने कब्र पर पांच बाते लिख डाली—

१. हे नेपोलियन! तुमने लाखो निर्दोष मनुष्यो की हत्या की।
२. लाखो स्त्रियो को तुमने विधवा और अनाथ बनाया।
३. लाखो बालको को तेने असहाय और अपग बना दिया।
४. लाखो निर्दोप स्त्रियो और पुरुपो की आखो मे तुमने आँसू बहाये।
५ यदि तू बादशाह के स्थान पर गरीब किसान का बेटा होता, राजमहलो के स्थान पर घास-फूस की झौपडी में जन्म लेता तो तेरा जीवन कुछ और होता, ससार के लिए तू कुछ भला कर सकता था…।

इगरसोल का यह कटुसत्य आज की मानवता की पुकार है, जो भी मनुष्य सत्ता और अधिकार में अधा होकर मानवता का विनाश करता है, उसकी सत्ता को धत्ता बताना चाहिए, अधिकार को धिक्कार देना चाहिए।

दुख और चिता

वासना से राग का जन्म होता है, राग से मोह का, मोह से ईर्ष्या का, ईर्ष्या से वैर का और वैर से दुख का। वासना की इस लबी परम्परा को कवि ने एक रूपक द्वारा प्रस्तुत किया है—

एकदिन रूप ने वासना को सुन्दर वस्त्रा भरणो से सुसज्जित देखा, वह उस पर मुग्ध हो गया और दोनो प्रणयबन्धन मे वध गये। वासना ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम रखा गया—राग।

राग, एक दिन ममता की मोहिनी मूर्ति पर आसक्त हो गया। राग ने ममता के साथ पाणिग्रहण किया। इन दोनो से जिस पुत्र का जन्म हुआ वह था—मोह।

मोह ने माया की लुभावनी सूरत पर अपने डोरे डाले और दोनो का गठबधन होगया। मोह-माया की सन्तान ससार मे ईर्ष्या नाम से प्रसिद्ध हुई। ईर्ष्या ने वैर के गले मे वर माला डाली। ईर्ष्या और वैर के योग से दो सन्ताने उत्पन्न हुई। एक का नाम है दुख और दूसरी का नाम है चिंता।

बस, आज ससार इन्ही—दुख और चिता से विक्षुब्ध हो रहा है।

सुन्दरी की सादगी

एक सुन्दर युवती रग-बिरगे वस्त्रो और बहुमूल्य स्वर्णाभरणो से सज्जित होकर शीशे मे अपना रूप निरख रही थी। उसके प्राकृतिक सौदर्य का उपहास करते हुए आभूपण बोले—सुन्दरी! हमसे ही तो तुम्हारी शोभा है, हम न होते तो तुम्हारी सुन्दरता

को कौन पूछता ? सुन्दरी को आभूपणो का व्यंग्य असह्य हुआ—उसने सब आभूपण उतार कर एक ओर रख दिए और अपने को शीशे के सामने खडा किया।

रग बिरगे वहुमूल्य वस्त्र जैसे हस रहे थे—"हम हो तो तुम्हारी सुन्दरता को चमकाते हैं ? मानिनी सुन्दरी ने रगीन वस्त्रो को भी उतारा और सफेद सादे वस्त्र पहन कर त्यागमूर्ति साध्वी वन गई। अब उसकी वाह्य सुन्दरता भी प्राकृतिक निखार से निखर उठी और आन्तरिक सौन्दर्य तो जैसे सोगुना हो उठा।

आभूषण और रगीन वस्त्र एक ओर पड़े देख रहे थे कि हजारो हजार सुन्दरियाँ आभूपणो से सजी, रग-बिरगे वस्त्रो मे रखी उस युवती साध्वी के चरणो में श्रद्धा के साथ सिर झुका रही है। उसीदिन उनका अहकार चूर-चूर हो गया और वाणी श्रद्धा से मूक हो गई।

चतुर किसान की तरह

एक अनपढ चतुर किसान खेत मे बीज बोने से पहले भूमि को अच्छी तरह से तैयार करता है, वीज भी परीक्षा करके लाता है, खेती के लिए पानी आदि की व्यवस्था करता है, पशु-पक्षियो से उसकी सुरक्षा का प्रबन्ध करता है—इतनी सब बाते होने पर वह बीज वोता है और अच्छी फसल की कामना करता हुआ दीर्घप्रतीक्षा करता है।

किन्तु मै देखता हूँ—अच्छे पढे-लिखे कहे जानेवाले युवक अपने प्रयत्न के विपय मे इतनी बाते नही सोचते। विचार आया, कल्पना जगी और वे झट से कोई न कोई कार्य प्रारभ कर देते है और थोड़ा सा कष्ट आने पर उसे छोडकर भाग भी जाते है। अधीरता और अविचारता से उनके प्रयत्न अधूरे ही नष्ट हो जाते है, श्रम, समय एव अर्थ की वर्बादी भी होती है, और जीवन मे निराशा के शिकार होकर वे हर क्षेत्र मे असफल होते जाते है। उन्हे किसान से सीखना

चाहिए—प्रयत्न प्रारभ करने से पूर्व उसके फल, उसकी सुरक्षा एवं सचालन के विषय मे पूरी कल्पना करले, और फिर धैर्य के साथ उसमे जुट जाय।

जीवन के क्षेत्र मे वही व्यक्ति सफल होता है जो चतुर किसान की तरह विचार और धैर्य के साथ श्रम करता है।

वीर्यरक्षा

वीर्य—शरीर का सारतत्त्व है। यही समस्त तेज और ओज का मूल स्रोत है। वैद्यक ग्रन्थो मे बताया गया है— मरण बिन्दुपातेन— वीर्य-बिन्दु का पतन होने से शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है।

जैसे एक औस गुलाब का इत्र बनाने के लिए लगभग ८७५२ रत्तल गुलाब के फूल नष्ट होते है, उसी प्रकार एक बिन्दु वीर्य तैयार होने मे शरीर की रक्त मॉस आदि अनेक धातुओ का विलय हो जाता है।

एक बार ग्रीस के महात्मा सोक्रेटीज से उनके शिष्य ने पूछा— मनुष्य को जीवन मे स्त्री प्रसग कितनी बार करना चाहिए?"

महात्मा—जीवन भर मे सिर्फ एकबार!

शिष्य—यदि इससे तृप्ति नही हो तो?

महात्मा—वर्ष मे एकबार!

शिष्य—यदि इससे तृप्ति नही हो तो?

महात्मा—महीने मे एकबार!

शिष्य—फिर भी नही रहा जाय तो?

महात्मा—खैर, महीने में दो बार, किन्तु फिर उसकी मृत्यु जल्दी होगी।

शिष्य - लेकिन, फिर भी इच्छा बनी रहे तो··?

महात्मा—फिर पहले अपना कफन मगाकर घर मे रख ले बाद मे चाहे जैसा करे।

क्योकि अति-विषय सेवन करने से मनुष्य की आयु, स्वास्थ्य, तेज एव प्रभाव क्षीण होने लगता है।

परस्त्री

चौथ का चॉद देखने से चोरी आती है—ऐसी कहावत है।

महर्षि वशिष्ठ ने कहा है—जैसे चौथ का चॉद देखने से कलक लगता है, वैसे ही परस्त्री की ओर दृष्टि करने से ही कलक आता है।

दुपहर की धूप के सामने देखने से जैसे ऑखे चिरमिरा जाती है, वैसे ही पर स्त्री की ओर देखने से सद्‌गुण चिरमिराने लगते है।

अनेक मनुष्यो की यह बुरी आदत होती है कि घर में सर्वांग-सुन्दर विनय-शीलवती पत्नी होते हुए भी उसे छोडकर वाहर की ओर उनका मन जाता रहता है, जैसे चावलो का सुन्दर भोजन छोड़कर सूअर विष्ठा खाने ललचाता है—

कण कुंडगं चइत्ताण विट्ठं भुंजई सूअरे।

स्वच्छ एव शीतल जल से तालाव भरा होने पर भी कौआ गदे घडो मे चोच मारता है। मिठाई से थाल भरे पडे होने पर भी मक्खी जैसे घाव पर वैठती है, वैसे ही व्यभिचारी पुरुष अपनी सुन्दर-स्त्री को छोडकर परस्त्री के साथ धूल चाटता है।

इसीलिए एक राजस्थानी कवि ने कहा है—

घर की खांड किरकिरी लागे गुड़ चोरी का मीठा,
पर-नारी के कारणे जूत पडंता दीठा।

स्त्री का रूप । पतिव्रत-धर्म

स्त्री का रूप उसकी सुन्दरता या साज-शृङ्गार मे नही, किन्तु उसके शील-धर्म मे है।

जैसे कोयल का रूप उसका मीठा स्वर है, तपस्वी का रूप उसकी

क्षमा है, कुरूप मनुष्य का रूप उसकी विद्या है, उसीप्रकार नारी का रूप है उसका पतिव्रत धर्म ।

जैसे तलवार की म्यान नही, धार देखी जाती है, गाय का रूप नही, दूध देखा जाता है, सेवक का नाम नही, काम देखा जाता है, नोट का आकार नहीं, मूल्य देखा जाता है, हीरे का वजन नही, पानी देखा जाता है, उसीप्रकार नारी का रूप और यौवन नही, किंतु उसका शीलधर्म देखा जाता है ।

काली नारी भी यदि पतिव्रता है तो वह कस्तूरी के समान मूल्यवान है । पतिव्रत-धर्म से हीन नारी चिरमी के समान सुन्दर होते हुए भी कौडी के मूल्य की भी नही है ।

उपयोग की कला

वस्तु का महत्त्व—उपयोग करने वाले पर है । जिस चाकू से हत्यारा आक्रमण कर लोगो की जान लूट लेता है, उसी चाकू से डाक्टर आप्रेशन कर रोगियो को स्वस्थ कर देता है ।

आस्ट्रिया निवासियो ने एक बार टर्की पर विजय प्राप्त की । दुश्मन की तोपो को गलाकर उन्होने एक २० टन का घटा बनाया और उसे विनेया के मन्दिर मे लगा दिया । वह घटा आज भी प्रार्थना के समय बजाया जाता है और हजारो व्यक्ति उससे ईश्वर-प्रेम, एव भक्ति की प्रेरणा लेकर प्रार्थना करते है ।

जब वह तोप रूप मे थी तो उसके भयानक शब्दो से लोग काप उठते थे, किन्तु आज उसके कर्णप्रियनाद से लोग आनन्दविभोर हो उठते है ।

यह अन्तर वस्तु का नही, वस्तु के उपयोग का है । जिसने वस्तु के उपयोग की कला सीखली, मिट्टी भी उसके लिए सोना है ।

किसका मन नहीं चलता ?

एक सुन्दर सवाद है। किसी कवि ने कल्पना की है—एक वार वन मे घूमते-घूमते सीताजी थक गई थी, लक्ष्मण पास मे वैठे थे, वह उन्ही की गोद मे सोगई। राम वाहर गये हुए थे, आये तो दूर से सीता को लक्ष्मण की गोद मे सोई देखकर कुछ शकित-से होगये। सोचा—लक्ष्मण के मन की परीक्षा करनी चाहिए। तव शुक का रूप वनाकर एक वृक्ष की डाल पर वैठकर वोले—

शुक—खिले हुए फूल को, पके हुए मधुर फल को और रूप-यौवन सपन्न स्त्री को देखकर किसका मन चचल नही होता ?[1]

लक्ष्मण ने उत्तर दिया—जिसका पिता पवित्र है, माता पतिव्रता है, उन दोनो से जो पुत्र उत्पन्न होता है उसका मन कभी चचल नही होता।[2]

शुक ने पुन कहा—स्त्री तो घी के घडे के समान है और पुरुप अग्नि के सदृश है। यदि परस्त्री किसी की गोद में सोई हुई हो तो फिर किसका मन नही चलता ?[3]

लक्ष्मण ने उत्तर दिया—मन मदोन्मत्त हाथी की तरह सर्वत्र दौडता रहता है, किंतु जिसके पास ज्ञान का अकुश है, वह अपने मन

---

१ पुष्पं दृष्ट्वा फलं दृष्ट्वा, दृष्ट्वा यौषित-यौवनम्।
त्रीणि रत्नानि दृष्ट्वैव कस्य नो चलते मनः ?

२ पिता यस्य शुचीभूतो माता यस्य पतिव्रता।
उभाभ्या यः समुत्पन्नः तस्य नो चलते मनः!!

३ घृतकुम्भसमा नारी तप्तांगारसमः पुमान्।
जानुस्थिता परस्त्री चेद् कस्य नो चलते मनः ?

को रोक सकता है, अर्थात् उसका मन नही चलता ।[1]

लक्ष्मण का उत्तर सुनकर राम अत्यत प्रसन्न हुए और अपने मूल रूप में प्रकट हुए ।

पतिव्रता के चार रूप

जैसे गाय, भैंस, वकरी और भेड का दूध ऊपर से सफेद दीखते हुए भी उनमे गुण का अन्तर रहता है, उसी प्रकार पतिव्रता स्त्री ऊपर से समान दीखने पर भी कई प्रकार की मनोभावना के कारण उनके स्तर में अन्तर रहता है ।

सत तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में पतिव्रता स्त्री के चार रूप बताये है—

१ उत्तम पतिव्रता—जो अपने पति के सिवाय स्वप्न में भी किसी पर-पुरुष की ओर नही देखती ।

२ मध्यम पतिव्रता—जो पर-पुरुष को देखकर उसे पिता और भाई के समान समझती है ।

३ निकृष्ट पतिव्रता—जो अपने कुल एव धर्म का विचार करके पर-पुरुष की ओर आकृष्ट न हो ।

४ अधम पतिव्रता- जो भय के कारण, अथवा अवसर नही मिलने के कारण पर-पुरुष का सग नही कर सकती ।

इन चारो मे प्रथम सर्वोत्कृष्ट है, तथा चौथा निम्नतर रूप है ।

पत्नी बनाम जरा

जो स्त्री अपने पति की सेवा करती है, मधुर वचन वोलकर प्रीति उत्पन्न करती है, चतुराई और समझदारी से पति का साथ

---

१ मनो धावति सर्वत्र मदोन्मत्तगजेन्द्रवत् ।
ज्ञानाङ्कुशे समुत्पन्ने तस्य नो चलते मनः ॥

देती है, वही वास्तव मे धर्मपत्नी है। पति का भरणकरने वाली भार्या है।

जो पत्नी—पति के साथ कलह करती है, कटुवचन बोलती है, रात-दिन अपनी शोख एव सिंगार की वस्तुओ की माग करती रहती है, वह पति को सुख देने वाली पत्नी नही, किन्तु उसके जीवन-रस को क्षीण करने वाली बीमारी है। जवान पति के लिए वह साक्षात् जरा—बुढापा है।

साध्वी स्त्री

जिस प्रकार कंटोवाली डाली को भी फूल सुन्दर बना देते है, अंधेरी काली रात को भी तारे सुहावनो बना देते है, वैसे ही लज्जा एव शील आदि गुणो से युक्त स्त्री—दु ख एव कष्टपूर्ण गृहजीवन को भी सुखमय बना देती है।

थका हारा यात्री जिसप्रकार शीतल छाया पाकर अपनी थकावट भूल जाता है, और कठोर श्रम से क्लात मजदूर जैसे मधुर पेय—(चाय-शर्बत) पीकर नई ताजगी प्राप्त कर लेता है, वैसे ही गृहजीवन के भारसे दबा मनुष्य पतिव्रता स्त्री के प्रेमपूर्ण वचन सुनकर और स्नेहमयी सेवा पाकर अपनी समस्त थकावट दूर कर प्रफुल्लित हो जाता है।

पुण्य को छिपाओ!

पुण्य और पाप छिपाने से बढ़ते हैं, प्रकट करने से घट जाते है। इसलिए पुण्य को छिपाना चाहिए, ताकि वह सदा बढता रहे, और पाप को प्रकट कर देना चाहिए, ताकि वह घट कर क्षीण हो जाय।

जैसे कीमती जेवर तिजोरी मे छिपाये जाते हैं, और कूडा-कचरा बाहर फेंक दिया जाता है, वैसे ही पुण्य, सुकृत कर्म को छिपाना चाहिए और पापों को बाहर फेंक देना चाहिए।

नींद

१. शरीर के लिए जितना आवश्यक भोजन है, उतनी ही आवश्यक है नीद। भूख नही लगना भी बीमारी है, और नीद नही आना भी। नीद नही आने के मुख्य कारण हैं—चिता, भय, शोक, अतिहर्ष, स्नायुदुर्बलता, बौद्धिक उलझन।

आज के धनिक वर्ग मे 'अनिद्रा' रोग का प्रावल्य है। अमेरिका मे हर साल करोडो रुपये की नीद की गोलियाँ विकती हैं। फिर भी ससार परेशान है कि नीद नही आती।

अनिद्रा का कारण बताते हुए कवि ने कहा है—

> सोना। जब तुम थे नहीं, सोते थे आराम।
> सोना जब घर आ गये सोना हुआ हराम।

—सोना (स्वर्ण) जब तक पास मे नही था तो आराम से सोते थे। अब सोना जब आ गया तो सोना (नीद) ही हराम हो गया।

निद्रा के प्रकार

आयुर्वेद के प्रमुख ग्रन्थ चरक सूत्र मे निद्रा के छ प्रकार बताये है—

> तमोभवा-श्लेष्मसमुद्भवा च,
> मनः-शरीर-श्रम-संभवा च।
> आगन्तुकी व्याध्यनुवर्तिनी च,
> रात्रि स्वभाव-प्रभवा च निद्रा।

—चरकसूत्र २१।५८

१ तमोभवा—मरण के समय आनेवाली।

२. कफजन्या—कफ आदि के कारण आनेवाली।

३ श्रमसंभवा—बुद्धि एव शरीर की मेहनत करने से आनेवाली।

४ आगतुकी—बिना कारण से आनेवाली।

५ रोगजन्या—किसी बीमारी आदि के कारण से आनेवाली।

६ स्वभावजन्या—रात्रि मे सोने के समय पर स्वाभाविक रूप मे आने वाली।

जैन सूत्रो मे निद्रा के पॉच भेद बताये है—

> निद्दा तहेव पयला निद्दा-निद्दा पयला पयला च
> तत्तो य थीण गिद्धी उ पचमा होई नायव्वा।

—उत्तराध्ययन ३३।५

निद्रा के पाच भेद है—

१ निद्रा

२ निद्रा-निद्रा

३ प्रचला

४ प्रचला-प्रचला

५ स्त्यानगृद्धि—इस नीदवाले में वासुदेव जितना वल आ सकता है, वह नीद मे ही उठकर हाथी के दात उखाडकर ला सकता है।

सोने के समय संकल्प

नीतिकार का कथन है कि—दु स्वप्नो एव अनिद्रा को टालने के लिए सोते समय मन को प्रसन्न और अच्छे सकल्प करने चाहिए।

> शयनकाले सत्सकल्पकरणम्।

सोने के समय पवित्र सकल्प करना चाहिए। प्रभु भजन, नवकार का जाप और इष्टदेव का नाम लेकर सोने वाले प्राय स्वस्थ नीद लेते है।

सोने की दिशा

प्राचीन ग्रथो का मत है कि पूर्व एव उत्तर की ओर सिरहाना करके सोना चाहिए।

> प्राक् शिरः शयने विद्या धनलाभस्तु दक्षिणे।
> पश्चिमे प्रवला चिंता मृत्युहानिस्तथोत्तरे।

पूर्व मे गिर करके सोने से ज्ञान लाभ होता है, उत्तर मे सिरहाना करने से धन लाभ, पश्चिम की ओर चिता एव उत्तर की ओर सिर करने से मृत्यु एव हानि होती है।

नैपोलियन बोनापार्ट हमेशा पूर्व मे सिरहाना करके सोता था। युद्ध के मैदान मे भी कभी वह पूर्व मे सिरहाना करने से नही चूकता। प्रसिद्ध दार्शनिक शोपनहॉवर को युवावस्था मे भयकर अनिद्रा रोग था। लेकिन जबसे उसने पूर्व मे सिर कर के सोना प्रारम्भ किया तो उसे अच्छी नीद आने लगी और स्वास्थ्य सुधर गया।

मन की निद्रा

मर्यादा से अधिक सोना—आलस्य है। आलस्य मनुष्य को अवनति का कारण है। वेद मे कहा है—

भूत्यै जागरण अभूत्यै स्वपनम् —शुक्लयजुर्वेद ३।१०

जागना उन्नति का एव सोना अवनति का सोपान है। बुद्ध ने कहा है— **नत्थि जागरतो भयं** - धम्मपद

जागते हुए को भय नही होता।

सोना भी दो तरह का है और जागना भी—

शरीर से सोना और शरीर से जागना—सामान्य है।

मन से सोना और मन से जागना—विशेष है।

मन की जागृति प्रबोध है, मन की निद्रा-प्रमाद है।

चिता, चिंता और निश्चिंतता—

चिता—मनुष्य को मरने पर जलाती है।

चिंता—जीवित मनुष्य को क्षण-क्षण जलाती रहती है।

निश्चिंतता—मरते हुए मनुष्य को भी फूल की तरह खिला देती है।

चिंता से मनुष्य का तेज घट जाता है, शरीर क्षीण हो जाता है। दु:ख उस पर घेरा डाल देता है।

एक वार एक योगी ने चिंता से पूछा—चिंता! तुम जहाँ रहती हो, वहा दुर्वलता भी जरूर रहती है और जरा (वुढापा) भी शीघ्र आ जाता है तो क्या तुम तीनो सहेलियाँ हो?

चिंता हँस कर वोली—नही! वे दोनो मेरी पुत्रवधू है। मेरे दु ख नाम का एक पुत्र है। और दुर्वलता तथा जरा दोनो उसकी पत्नियाँ है। जहाँ मैं जाती हूँ वहाँ मेरा विनीत पुत्र दु ख भी मेरे साथ आता है और दुर्वलता एव जरा भी पति की अनुगामिनी होकर वहा साथ-साथ आती है और मेरी सेवा करती है।

वास्तव मे दु ख, दुर्बलता, जरा यह सव चिंता का ही परिवार है।

शोक-चिंता

भूतकाल मे वीती वात पर पछताना, रोना, शोक है और भविष्य की कल्पना मे डूव जाना, उदास होकर बैठ जाना— चिंता है।

समझदार मनुष्य न अतीत का शोक करता है, न भविष्य की चिता। वह तो सोचता है, जो कर्म-या भाग्य मे लिखा था वह होकर रहा और भविष्य मे भी वही होगा। शोक करने से क्या कभी मरे हुए व्यक्ति जीवित हो सके है? गई हुई सपत्ति वापस मिली है? और चिंता करने से क्या किसी की आती हुई विपत्ति टल गई?

शोक एव चिंता को मिटाने का उपाय है—मनुष्य वर्तमान मे प्रसन्न रहकर उद्यम करता रहे।

घृणा मत करो—

घृणा—मन का जहर है।

नीतिकार का कथन है—घृणा करनी हो तो इन तीन चीजो से करो—

१ पाप से।

२ अहकार से।

३ मन की मलिनता से।

ओर तीन से कभी भी घृणा मत करो—

१ रोगी से,

२ गरीब से,

३ दुखी से।

मृत्यु का भय · सब को समान है

१ ससार मे सबसे बडा भय है—मौत का।

मरणसम नत्थि भय—मृत्यु के समान और कोई भी दूसरा भय नही है।

राजस्थान में कहावत है—**मार आगे भूत भागे**—मृत्यु को देखकर भूत भी भाग जाते है।

मानव ! जिस मृत्यु का तुझे सबसे अधिक भय है, क्या दूसरो को भी उतना भय नही है ? फिर अपने स्वार्थ के लिए दूसरो को मौत के घाट क्यो उतारता है ?

खान-पान छूट गया

मरने के भय से मनुष्य का खाना पीना छूट जाता है और वह चितासागर मे गोते लगाने लगता है।

यूनान का एक बादशाह बहुत मोटा ताजा हो गया था। उठना वैठना, हलना-चलना भी कठिन हो गया। हकीमो को बुलाकर शरीर हलका करने की दवा मांगी। हकीमो ने कहा—जहाँपनाह ! गरिष्ठ भोजन मत करिए।

बादशाह को यह बात जची नही ! लुकमान हकीम को बुलाकर पूछा—शरीर हल्का करने की दवा है कोई ?

लुकमान ने नाडी देखकर कहा—आप चालीस दिन मे मर जायेगे।

बादशाह भयभीत हो गया। खाना-पीना भी छूट गया। चालीस दिन मे शरीर भी काफी हल्का हो गया। फिर लुकमान हकीम ने कहा—"अब ठीक होगये ! हल्का और सादा भोजन करो।" मरने के भय से ही बादशाह का शरीर हल्का हो गया।

लाज सुधारै काज

लज्जा—मनुष्य का श्रेष्ठ रूप है। यदि लज्जा है तो मनुष्य का सुधार हो सकता है, वह पापो से बच सकता है, बुराइयो से दूर रह सकता है।

निर्लज्ज मनुष्य का पतन होते देर नही लगती। उसको किसी का भय नही रहता। कोई कुछ कहे तो उसको चिंता नही, शर्म नही। राजस्थानी मे कहावत है—

नकटा ! थारै नाक कित्ता ?

निनाणवे।

नकटा ! थारी नाक कटी ?

सवा गज बधी !

ऐसे निर्लज्ज मुर्दे के समान है। मुर्दे पर चाहे गाडीभर लक्कड डाल दो उसे कोई भार नही लगता। वैसे ही निर्लज्ज मनुष्य को चाहे जितना उपदेश, शिक्षा एव नीति की बात कहो उस पर कोई असर नही होता !

स्वार्थ और मित्रता

जैसे धूप और छाया एक जगह नही रह सकती, वैसे ही स्वार्थ और प्रेम एक साथ नही रह सकते।

प्रेम बलिदान मागता है, त्याग मागता है। स्वार्थ हमेशा अपना ही हित देखता है। स्वार्थी आदमी कहता है—

"मिया की दाढी जलने दो, हमारा दिया बलने दो।"

वह अपनी बेटी को भी यह कहता है—

काम करोगी बेटी! सुख से खावोगी रोटी।

स्वार्थी के सामने, माता, पिता, भाई-बहन और पुत्र-पुत्री का कोई रिश्ता नही रहता, उसका सबसे वडा रिश्ता है—स्वार्थ! मतलब!

एक वार कुत्तो की सभा हुई। सबने मिलकर एक प्रस्ताव पास किया—आज से सव प्रेम से मिलकर रहेगे, कोई किसी के साथ लडेगे नही। प्रस्ताव पास करके उठने लगे कि आकाश से चील के मुह से एक हड्डी का टुकडा गिरा। वस, गिरते ही सारे उछल पडे, और हड्डी के टुकडे के लिए एक दूसरे पर घुर्राते हुए काटने लगे!

स्वार्थ के काजी से मित्रता का दूध फट जाता है।

स्वार्थ पूरा होने पर

स्वार्थी मनुष्य तभी तक किसी को अपना मित्र या प्रेमी मानता है जब तक उसका स्वार्थ सधता है।

नीति का कथन है वेश्या निर्धन पुरुष को, प्रजा शक्तिहीन राजा को, पक्षी फलहीन वृक्ष को, भोजन करने के बाद अतिथि घर को, दक्षिणा लेने के वाद यजमान ब्राह्मण को, विद्या मिल जाने के बाद शिष्य गुरु को, तथा मृग दावाग्नि से जले हुए वन को और पढलेने के वाद अखवार को जैसे छोड देते हैं, वैसे ही स्वार्थी मनुष्य अपना स्वार्थ सधने के वाद दूसरो को छोड देते है।

भूल को समझो

भूल होना—कोई वड़ी बात नही! वड़े-वड़े मनुष्य, ज्ञानी

विद्वान् और राजनेताओ से भी भूले होती है। रथनेमी जैसे तपस्वी, गौतम जैसे ज्ञानी और हरिभद्र जैसे विद्वानो से भी भूल हो गई। किंतु उनका वडप्पन इसमे था कि वे तुरत अपनी भूल को समझ गए और संभल गए।

मूर्ख आदमी भूल करके उसे कभी स्वीकार नही करता। उसका सिद्धान्त रहता है—"जेवडी ब्रलजाय, पर वट नही जाय।" कुछ भी हो, अपनी अकड नही छोडना चाहिए। 'गिर पडे, तव भी टाग ऊची'—उनका यही रवैया रहता है। 'राम कहकर रहीम न कहना'—यह उनका आदर्श वन जाता है।

ज्ञानी भी भूल कर सकते है—किंतु वे तुरत उसे स्वीकार कर लेते हैं। उन्हे भूल स्वीकार करने मे कभी भय नही लगता, अपमान नही लगता।

जो भूल को स्वीकार कर लेते हैं—वे अपनी भूल को सुधार भी लेते है।

गाधीजी का कथन है—भूल करना स्वभाव है, भूल को स्वीकार करना समझदारी है, और भूल को पुन-पुन. नही दोहराना वीरता है।

लोग भूल को स्वीकार नहीं करते।

- मनुष्य का स्वभाव है—वह प्राय अपनी भूल को कभी कवूल नही करता, किंतु दूसरे के सिर मढने की ही कोशिश करता है। किसी के वोलने मे गलती हो गई, उसे कहो तो तुरत उत्तर देगा—मैंने तो ठीक ही कहा था—आपके सुनने मे फर्क रहा!
- एक सेठजी के यहा रसोइया खाना वनाता था। उसकी आदत थी कभी भी अपनी गलती स्वीकार नही करता। कभी साग मे मिर्च कम रहती और सेठ जी कहते तो झट से उत्तर देता—

'आजतो बम्बई या फैशन का सागवनाया है।' कभी मिर्च ज्यादा हो जाती तो कहता—'आज मारवाडी साग वनाया है।' कभी खटाई ज्यादा पड जाती तो कहता – 'आज महाराष्ट्रियन रसोई वनाई है।'' मतलब अपनी गलती को कभी स्वीकार नही करता।

- एक बडे नेता ने वम्वई मे अपने भापण मे कई अनुचित बाते कह दी। दूसरे दिन समाचार पत्रो मे वह भापण छपा। लोगो ने उनसे पूछा तो वोले—मैने तो ठीक वात कही थी, यह तो छापने वालो की भूल है।
- एक घर मे शादी होते ही वहू ने सास मे अलग चूल्हा जला लिया। पास-पडौस की औरतो ने सास से वहू के अलग होने का कारण पूछा तो सास वोली—"वहू के सवामण नखरो के भार से मै तो दवकर मरने लग गई।"

  वहू से पूछा तो बोली—'क्या करूँ। सास की जीभ सवा गज की है, सुनते-सुनते मेरे कान फूट गये।''

रूढि

एक मारवाडी कहावन है—"रीत रो रायतो करणो ही पड़े"—अर्थात् कुछ भी हो, परपरा और रूढि को निभाना पडता है। सचमुच विवेक की जहाँ कमी होती है, वहा रूढि मुख्य रहती है। इसीलिए विचारको ने कहा है—'शास्त्राद् रूढिर्बलीयसी' शास्त्र से भी रूढि जबर्दस्त होती है।

अफ्रीका की जगली जातियो मे एक विश्वास प्रचलित था कि मृतक की कब्र के नीचे जो चीज रखी जाती है, वही उसे अगले जन्म में मिलती है। धीरे-धीरे यह विश्वास रूढि बन गया और राजाओ तथा सरदारो की कब्रो मे सुन्दर स्त्रिया एव गुलामो को भी दफनाया जाने लगा ताकि उन्हे अगले जन्म मे वे मिल जायँ।

रूढ़ि – अज्ञान मूलक ही होती है। उसमें सत्य-असत्य का निर्णय नही किया जाता, किंतु जैसा चला आया है वैसा ही करते जाना— लीक पीटते जाने की मनोवृत्ति रहती है।

एक स्थान पर विवाह हो रहा था। अचानक एक बिल्ली कही से आ टपकी। विवाह के समय बिल्ली का आना अशुभ समझकर वर के पिता ने झट से उसके ऊपर एक बडा घमेला (टोपला) डाल दिया। बहू ने इसे कुल परम्परा समझा। कुछ वर्षो बाद जब उसकी कन्या की शादी होने लगी तो बोली—"एक बिल्ली पकडकर लाओ और टोपले के नीचे डालो तभी वर-वधू उठेगे। क्योकि मेरी शादी मे भी मेरे ससुर ने ऐसा ही किया था।"

लक्ष्मी किसे चाहती है ?

जो मनुष्य धन-मान-यश कीर्ति के पीछे भागता है, वह ऐसा ही मूर्ख है जैसा कोई अपनी छाया को पकड़ने के लिए उसके पीछे दौड़ लगाये। छाया को पकडना हो, तो उसके पीछे नही, किन्तु उससे मुँह मोडकर पीठ करके खडे होने पर ही छाया पकड में आती है। वैसे ही धन, यश, कीर्ति आदि से जिसने मुँह मोड़ लिया तो वह अपने आप ही उसके चरणो मे आ गिरती है।

गुजरात मे एक कहानी प्रसिद्ध है। अहमदाबाद मे एक हरीसिंह पटेल रहता था। वह सुबह के समय घूमता हुआ पश्चिम दिशा मे जा रहा था। आगे-आगे उसकी छाया चल रही थी। मूर्ख पटेल ने उसे भूत समझा और उसे पकडने के लिए दौडा। वह ज्यो-ज्यो दौडा जा रहा था, त्यो-त्यो छाया उसके आगे-आगे दौड़ती गई। वह थक कर चूर-चूर हो गया, दम भर गया। तभी श्री सहजानदजी स्वामी (स्वामीनारायण सप्रदाय के आदि गुरु) रास्ते मे मिल गये। पटेल की मूर्खता पर उन्हे दया आई। उन्होन उसका मुँह घुमाकर पूर्व

की ओर कर दिया। बस, अब वह छाया का भूत भी उसके पीछे-पीछे चलने लगा। पटेल यह देखकर बहुत प्रसन्न हुआ।

आशा-तृष्णा को इसी प्रकार पीठ दिखाने पर लक्ष्मी, कीर्ति आदि पीछे चलने लगती है।

धैर्य धारण करो !

दुख, कष्ट एव विपत्ति आने पर उसका निमित्त दूसरे को मानकर आक्रोश एव रोष मत करो ! कोई भी कष्ट एव विपत्ति अपने ही कर्म का फल है, यह जानकर उस पर सतोप एव धैर्य धारण करो !

श्रीमद्‌भागवत मे कहा है—

जिहवा क्वचित् सदशति स्वदद्भि—
स्तद्वेदनायाः कतमाय कुप्येत् ।

—भागवत १२।२३। १

—अपने दाँतो से कभी अचानक अपनी जीभ कट जाती है उस समय वेदना होने पर मनुष्य किस पर क्रोध करता है ? क्या दाँतो को तोड डालता है ? नही ! चलते-चलते अपने ही पाव से ठोकर खाकर मनुष्य गिर जाता है और चोट लग जाती है। उस समय क्या वह अपने पावो पर रोष कर चोट मारता है ? नही ! इसी प्रकार आये हुए सकट एव कष्ट को अपने कृत-कर्म का फल मानकर न दूसरो पर रोष करे और न स्वय पर ही ! किंतु उस समय धैर्य धारण करके उस कष्ट को सहन करना चाहिए।

ज्ञान के दो प्रकार

ज्ञान प्रकाश करने वाला है। वह दो प्रकार का है—एक ऊपर का ज्ञान, जिसे किताबी ज्ञान कहते है और दूसरा भीतर का, जो हार्दिक ज्ञान कहलाता है।

किताबी ज्ञानवाला—झूठ, चोरी, वेईमानी आदि को वुरा मानकर भी उन्हे छोडता नही, उन्ही से चिपटा रहता है।

हार्दिक ज्ञानवाला वुराई को समझ कर उससे वैसे ही वचता है, जैसे साप, विच्छू आदि से वचा जाता है।

मुसलमानो का विश्वास है कि मुहम्मद साहव को दो तरह से ज्ञान मिला था—इल्मे-सफीना और इल्मेसीना। पहला किताबी ज्ञान—जो कुरानशरीफ के रूप में प्रकट किया और दूसरा हार्दिक ज्ञान जो योग्य अधिकारियो का दिया।

अल्पज्ञता

सस्कृत के एक कवि ने कहा है—

ज्ञानलवदौर्विदग्ध्यादज्ञता परमामता—

—अल्पज्ञता से अज्ञता उत्तम है।

अल्पज्ञ मनुष्य अपने को अधिक ज्ञानी समझता है और इसी नासमझी मे वह अपना भी अहित कर देता है और दूसरो का भी। गुजराती मे एक उक्ति प्रसिद्ध है—

हूँ डाह्यो तें बहु खरडाय,
डाह्यो कागडो वे पगे वधाय।

अधूरे ज्ञानी से अज्ञानी अच्छा है, क्योकि अधूरे ज्ञानी की जिज्ञासा समाप्त हो जाती है, वह सोचता है, मैं सव कुछ समझता हू। उसके ज्ञान के द्वार वद हो जाते है, जवकि अज्ञानी अपने को अज्ञानी समझकर ज्ञान की खिडकियाँ खुली रखता है और ज्ञानी वनने का प्रयत्न करता है।

थोडे ज्ञान का अहकार करनेवाला सदा अल्पज्ञ ही वना रहता है जवकि अज्ञानी ज्ञान प्राप्त करता-करता वहुज्ञ वन सकता है।

सच्चा ज्ञानी

सच्चा ज्ञानी—वह नहीं, जिसने पुस्तको को रट लिया हो, समूचे

वाड्मय का आलोडन कर डाला हो और ज्ञान के भार से दवा—फूला फिरता हो ।

जैन आचार्यों ने ज्ञानी के दस लक्षण बताये हैं—

अक्रोध—वैराग्य—जितेन्द्रियत्व,
क्षमा दया सर्वजनप्रियत्वम् ।
सतोष-दाने भय-शोक-मुक्ति—
ज्ञानान्विताना दशलक्षणानि ।

—अक्रोध, वैराग्य, जितेन्द्रियता, क्षमा, दया, सवजन का प्रिय होना, सतोष, दान, निर्भयता और शोक एव चिता से रहित होना—ये दस लक्षण जिसमे हो, वही सच्चा ज्ञानी है ।

मूर्ख का लक्षण

यदि तुम बुद्धिमान हो तो अपनी बुद्धि का तनिक भी अभिमान मत करो । क्योकि बुद्धि का अभिमान करना तो मूर्ख का लक्षण है ।

जो अपनी बुद्धि का अहकार कर दूसरो को मूर्ख समझता है, मेरे विचार मे उससे बडा मूर्ख और कौन होगा ?

बुद्धिमान सदा अपने को विद्यार्थी समझता है, इसलिए ससार का हर एक प्रसग उसे शिक्षा एव ज्ञान देनेवाला गुरु बन सकता है, किंतु जो मूर्ख है, वह तो अपने को विद्वान समझता है, इसलिए उसे ससार मे कही भी कोई गुरु नही मिलता, उसके लिए ज्ञान के समस्त द्वार बद हो जाते है ।

सच्ची सीख दो

यदि कोई तुम से सलाह लेने आता है तो, युधिष्ठिर की तरह हित की शिक्षा दो, वह भी उसके हित की, न कि तुम्हारे हित की । क्योकि वह तुमसे पूछता है तो तुम्हारा विश्वास करता है, और तुम्हे

अपना हितचिंतक समझता है। तुम उसे अहित को सलाह देकर उसके साथ विश्वासघात मत करो।

जैसे किसी का हाथ, पैर तोड देना, आँख फोड देना बहुत बडा पाप है, उसी प्रकार गलत सलाह देकर उसकी सद्बुद्धि को नष्ट कर देना भी महापाप है।

किसी के सलाह पूछने पर या तो मौन रहो, या फिर सच्ची सलाह दो। गलत सलाह देना आँखवाले को अधा बनाने जैसा पाप है।

पहले सोचो

कुछ भी कार्य करने से पहले उसका फल सोचो। बीज बोने से पहले यह देखो कि इसके फल कैसे लगेगे। चतुर किसान अच्छे बीज वोता है ताकि उनके फल अच्छे लगे।

करने से पहले सोच लेनेवाला ज्ञानी है, करने के वाद सोचने वाला अज्ञानी है।

चार बड़े पाप

बादशाह जहागीर वडा न्यायी और प्रजाप्रिय राजा हुआ है। उसने अपने मौलवी कुतुवद्दीन से एक वार पूछा—कौन से बडे पाप करने वाले को माफ नही करना चाहिए?

उत्तर मे कुतुवुद्दीन ने कहा—

काते-उल-शजर—बड पीपल आदि हरा वृक्ष काटने वाला।

वाय-उल-वशर—मनुष्य को वेचने वाला।

जाबेह-उल-बकर—गाय को मारने वाला।

लामेह-उल-खपर—परस्त्री के साथ कुकर्म करने वाल·

ये चार वड़े पाप है, इन्हे कभी वख्शा नही जाता

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—समुद्र से भी अथाह क्या चीज है?

उत्तर—दुर्जनो का दुश्चरित और व्याकरण-विद्या !

प्रश्न—मनुष्य को रहना कहा चाहिए ?

उत्तर—सज्जनो के सन्निकट अथवा काशी मे ।

प्रश्न—ससार मे सब से दयनीय कौन है ?

उत्तर—जो धनवान होकर भी कजूस है !

प्रश्न—मनुष्य की सबसे बडी नीचता क्या है ?

उत्तर—सर्व साधारण के साथ उसके द्वारा किया गया पाप !

> किमगाध जलधेरवि, खलचरितं शब्दविद्या च ।
> क्व खलु विधेयो वासः, सज्जननिकटेऽथवा काश्याम् ।
> इह भुवने कः शोच्यः ? सत्यपि विभवे न यो दाता ।
> कि लघुताया मूल, प्राकृतपुरुषेषु यत्कृतं पापम् ।

—महाकवि विद्यापति

तीन गुरु

ज्ञानी का गुरु उसका अन्तर विवेक है । वह अपने विवेक से ही कृत्य-अकृत्य का निर्णय करता है ।

मूर्ख का गुरु—लोकरूढि है । जैसी लोकरूढि चली आती है उसी के अनुसार मूर्ख आचरण करता है, वह लकीर का फकीर होता है ।

पशु का गुरु—डडा होता है । पशु भय से चलता है, भय, भूख-प्यास के अनुसार वह अपना रास्ता लेकर इधर-ऊधर भटकता रहता है ।

यदि तुम अपने विवेक से चलते हो तो—ज्ञानी हो !

यदि लोकरूढि पर ही चलते हो तो—अज्ञानी हो ।

यदि भय और शरीर की आवश्यकता के अनुसार चलते हो तो—पशु हो ।

इनसे सीखिए

नीतिज्ञ चाणक्य ने एक श्लोक में कहा है—

> **सिंहादेकं बकादेकं शिक्षेच्चत्वारि कुक्कुटात् ।**
> **वायसात् पञ्चशिक्षेत षट्शुनः स्त्रीणि गर्दभात् ॥**
>
> **—चाणक्यनीति ६।१५**

सिह से एक, वगुले से एक, कुक्कुट से चार, कौए से पाच और गधे से तीन गुण सीखने चाहिये।

सिह से—छोटा वडा जो भी काम करना हो, उमे पूरे प्रयत्न के साथ करना चाहिए।

बगुले से—देश, काल एव परिस्थितियो के अनुसार जहा जरूरत पडे अपनी इन्द्रियो पर सयम करके अपना कार्य सिद्ध करना चाहिए।

कुक्कुट से—जल्दी उठना, झगड़े को लवा नही चलाना, वधुओ को हिस्सा देना एव आक्रमण करके भोजन प्राप्त करना अर्थात् श्रम करके पेट भरना।

कौओ से--गुप्तमैथुन, कार्यसिद्धि के लिए धृष्ट भी वन जाना, समय पर सग्रह करके रखना, सदा चौकन्ना रहना, किसी का विश्वास नही करना।

कुत्ते से—वहुत भोजन कर सकना, फिर भी थोडे मे संतुष्ट रहना, सुख से सोना, जल्दी जागना, स्वामो की वफादरी रखना एवं वीरता दिखाना।

गधे से—थकने पर भी भार ढोते रहना, सर्दी गर्मी की परवाह किये विना अपना काम करते जाना और सुख-दुख मे सदा सतुष्ट रहना।

इस प्रकार इन पशु-पक्षियो मे भी ये नीति के गुण सीखने चाहिए।

वहम

जैसे हजार मन दूध को एक खटाई की बूद फाड डालती है, वैसे ही वर्षों के पुराने सम्बन्ध और प्रेम को वहम का एक झोका तोड डालता है।

काच को एक हलकी सी ठेस भी तोड डालती है, वैसे ही प्रेम को वहम की हल्की सी ठेस चकनाचूर कर देती है।

ससार मे प्रत्येक वस्तु का उपचार है—अग्नि का जल, धूप का छाता, हाथी का अकुश, पशु का डडा, रोग का औषधि, आदि हर वस्तु का उपचार किया जा सकता है, किंतु वहम ही एक ऐसी वस्तु है जिस पर कोई उपचार नही चलता। इसलिए कहा जाता है—वहम की दवा लुकमान हकीम के पास भी नही थी।

नीति के दस बोल

१ प्रेम मे वहम करना और प्रतिज्ञा करके अह करना—ना समझी है।

२ पराया दोष कभी मत उघाडो, किन्तु अपना दोष उघाड दो।

३ दूसरे का गुण कभी मत छुपाओ, और अपना गुण अपने मुह से प्रकट मत करो!

४ दूसरो की सेवा करने सदा तत्पर रहो, किंतु अपनी सेवा कराने में सकोच करो।

५ हाथ से सच्चे रहो—कभी किसी की वस्तु मत उठाओ।
जीभ से सच्चे रहो—कभी झूठ मत बोलो।
लगोट के सच्चे रहो—कभी परस्त्री की तर्फ मत ताको।

६ अपने माता-पिता, मित्र, पत्नी और अतिथि—इन चारो का सदा सम्मान करो।

७ धन सपत्ति पाकर, सम्मान व पद पाकर, दूसरो की निंदा सुनकर और अपनी प्रशसा सुनकर—कभी भी फूलो मत।

८ खाने-पीने की, सोने-उठने की, वडे-छोटे की, और खर्च की-मर्यादा रखनी चाहिए।

९ ऐसा काम न करो, जो करके पछताना पडे,

ऐसी वाणी न वोलो, जो बोल के पछताना पडे।

ऐसा वचन न दो, जो देकर पूरा किया न जा सके,

और ऐसा व्यापार प्रारभ मत करो, जिसे करके सभाला न जा सके।

१० भूख लगने पर खाना, जरूरत होने पर वोलना, उपयोगी होने पर देना, और आवश्यक होने पर काम करना—चतुर आदमी की निशानी है।

उत्साहहीन—मुर्दा

जिस वृक्ष की जड़ सूख गई है, वह फिर से हरा नही हो सकता, जिस तन से प्राण निकल गये है, वह फिर से सचेतन नही हो सकता इसी प्रकार जिसका उत्साह मर चुका है, वह जीवन मे फिर से कुछ भी नया काम नही कर सकता।

उत्साहहीन व्यक्ति, सूखा वृक्ष और मुर्दा शरीर तीनो वरावर है।

छोटी शक्ति

छोटी-छोटी शक्तियाँ भी यदि सगठित हो जाती है और निरन्तर प्रहार मे जुट जाती है तो उसके सामने वडी वडी दुर्भेद्य कही जाने वाली शक्ति भी परास्त होकर खड-खड हो जाती है—ऐसा एक वार मुझे अनुभव हुआ।

वम्बई मे विक्टोरिया गार्डन मे एक वार आस्ट्रेलिया के साँप मगाये गये। आस्ट्रेलियन साप ससार के साँपो मे सबसे भयकर और

तीव्र जहरवाला होता है। बडे-बड़े वीर भी उसके उठे हुए फन को देखकर काप-काप जाते हैं।

पर, मैने गार्डन में देखा कि उस ससार के भयकरतम साँप पर एकदिन चीटियो ने आक्रमण कर दिया। जिन क्षुद्र चीटियो को नवजात बालक भी अपने पाँव से रोद सकता है, उन चीटियो ने मिलकर जहरीले नाग को समाप्त कर डाला और उसकी विशाल देह को छलनी बना दिया।

मै सोचता रह गया—छोटी शक्तियाँ मिलकर बडी शक्ति का दम तोड सकती है।

पराये पर अपनत्व

मनुष्य का शरीर भी अपना नही होता, वह भी अतिम समय मे उसका साथ छोड देता है और परलोक की यात्रा के लिए उसे अकेले ही 'पर भव' के पथ पर डाल देता है, तो फिर धन, सपत्ति, पुत्र परिवार आदि उसके अपने कैसे होगे ?

आश्चर्य तो यह है कि जहाँ 'स्व—जात' पुत्र भी आज पिता को धोखा दे रहे है, वहा नि सतान मनुष्य पराये पुत्रो को अपना बनाने की कल्पना करता है।

एक भाई ने सत से कहा—मैं एक पुत्र को 'गोद' ले रहा हू !

सत ने मुस्कराकर उसी के सामने 'गोद' को उल्टा लिख दिया 'दगो'। गोद का पुत्र प्राय दगा देता है, पर मोह-मूढ मानव इस सत्य को तब स्वीकार करता है जब उस पर चोट लगती है।

मन—मान

मन—मनुष्य के चितन एव ज्ञान का प्रतीक है। किन्तु जब इसमे 'अ' की मात्रा बढती है अर्थात् अज्ञान का प्रवेश होता जाता है तो

विवेक एव ज्ञान का प्रतीक मन 'मान' वनकर अज्ञान का सूचक वन जाता है।

मन—विवेक है ! ज्ञान है।

मान—अविवेक है ! अज्ञान है।

विवेक की एक मात्रा

'राजा' शब्द मे से यदि 'आ' की मात्रा निकल जाये तो 'रज' रह जायेगा। एक मात्रा के फेर से अर्थ मे कितना बडा अन्तर आ गया ?

'राजा'—अर्थात् स्वामी

'रज'—अर्थात् धूल

इसी प्रकार मानव में 'आ' अर्थात् विवेक की एक मात्रा है तब तो वह राजा है, जगत् का स्वामी है, यदि यह एक मात्रा निकल गई। वह विवेक-शून्य हो गया तो वही 'रज' अर्थात् धूल के समान अति तुच्छ हो गया !

ईर्ष्या

ईर्ष्या—मन का वुखार है। वुखार से शरीर मे अनेक प्रकार के कीटाणु घुस आते है और कई तरह की वीमारियाँ खडी हो जाती है। ईर्ष्या से भी मन में अनेक दोष पैदा होते है—पागलपन ! हीन भावना ! अधापन आदि, अधिकतर ईर्ष्या के ही परिणाम होते है।

लक्ष्य की ओर

चलना—कोई महत्वपूर्ण नही है, महत्वपूर्ण है लक्ष्य की ओर चलना। वाण यदि लक्ष्य को बीधता है, गोली यदि निशाने पर लगती है और दवा यदि रोग पर कारगर होती है तो उसका महत्व है, अन्यथा वाण का वीधना, गोली का लगाना और दवा देना दूसरे अनर्थ भी पैदा कर सकते है।

लक्ष्य की ओर गति—प्रगति है, लक्ष्य से विमुख गति—अवगति है। एक चलना है, एक भटकना है।

सस्कारनिर्माण

पशु-पक्षियो मे प्राय देखा जाता है माता-पिता की वृत्ति ही सतान मे आती है। राजहस के वच्चे मोती चुगना सीख जाते है, वगुले के वच्चे मछली, गाय, भैस के घास, सिंह के मांस और कबूतर के वच्चे अन्न के कण ! किन्तु मानवजाति मे ऐसा नियम नही है। धार्मिक और सदाचारी माता-पिता की सतान में भी अधर्ममय सस्कार उभरते देखे जाते है और अधार्मिक माता-पिता की सताना को परम भक्त वनते भी !

पशुपक्षी जन्मगत सस्कारो से अनुप्रेरित रहते है, किन्तु मानव के निर्माण मे सस्कारो के साथ-साथ वातावरण, सगति एवं ज्ञान का भी प्रभाव रहता है।

गृहस्थजीवन की गाड़ी

मैं देख रहा हू—घोडा गाडी मे एक घोडा जुते हुए है और सवारी वैठी है। गाडीवान उस पर चावुक मार रहा है, लगाम खीच रहा है और इच्छा एव शक्ति न होते हुए भी घोड़े को जवर्दस्ती वह भार खीचना पड रहा है, क्योंकि वह पराधीन है।

फिर सोचता हू—इस घोडे से भी आज के मानव की स्थिति अधिक दयनीय है। गृहस्थजीवन की गाडी को खीचते-खीचते उसका दम फूल रहा है, ऊपर से पत्नी के व्यग वाणरूप चावुक लग रहे है, कही बच्चो की रसाकसी रूप लगाम खीची जा रही है और विचारा इन्सान वेवस हुआ इस गाड़ी को खीचे जा रहा है, दम डालता हुआ।

तैराक हो

समुद्र चाहे जल का हो, या ज्ञान अथवा सुख का, उसमे गोता लगाना बुरा नही है, किंतु गोता लगाने वाला तैराक तो होना ही चाहिए, अन्यथा तैरने की वजाय डूबजायेगा।

संस्कारित

अन्न को जव तक सस्कारित नही किया जाता, वह खाने के लिए उपयोगी नही वनता। जीवन को भी जव तक सस्कारित नही किया जायेगा, वह समाज एव राष्ट्र के लिए उपयोगी कैसे होगा ?

वास्तविकता और कृत्रिमता

संसार मे वास्तविकता से अधिक कृत्रिमता का आदर होता है—मैंने अनुभव किया।

उद्यान में घूमनेवाले लोग महकते फूलो को देखकर उन पर क्षण भर लुब्ध होते है, किंतु दूसरे ही क्षण उन्हे डाली मे तोड़ डालते है, नोच लेते है, और कलियो को मसल कर मिट्टी मे फेक देते है, किंतु वे ही सज्जागृह (ड्राइ ग रूम) में आकर प्लास्टिक के फूलो के गुलदस्ते सजाकर रखते है।

मदिरो मे आज स्थान-स्थान पर भगवान की प्रतिमाओ की पूजा होती है, दूध-दही चदन से उनके अभिषेक होते है, किंतु जब भगवान स्वय विद्यमान थे तो छह-छह महीने तक उन्हे भिक्षा भी नही मिली। स्थान-स्थान पर उनको पीडाए दी गई।

इसीलिए मैंने अनुभव किया—वास्तविकता से भी अधिक कृत्रिमता प्यारी लगती है।

सरसता

जहा सरसता होती है वहा आकार-प्रकार, रूप आदि गौण बन

जाते है, जलेबी टेढ़ी-मेढ़ी होते हुए भी लोग उसे कितने चाव से खाते है ? वैसे ही सरस व्यक्ति मे चाहे अन्य कुछ विशेषता हो या नही, किंतु उसकी सरसता के कारण ही लोग उसका आदर व स्नेह करने लग जाते है ।

शक्ति-सचय

वृक्ष—जव अकुर रूप मे, और उससे भी पूर्व वीज रूप मे होता है, तव उसे चारो तर्फ भय ही भय रहता है । थोडी-सी हवा उसकी जडे उखाड सकती है, थोड़ा-सा पानी उसे सडा सकता है, एक वालक का कोमल हाथ भी उसे कुचल सकता है और एक छोटी सी चीटी भी उस बीज को खाकर नष्ट कर सकती है । किंतु जव वह शक्ति का सचय करके धीरे-धीरे अपना पूर्ण विकास कर लेता है, समर्थ और वलशाली वन जाता है तो आधी, तूफान और मूसलधार वर्षा भी उसका कुछ नही विगाड सकती । मस्तहाथी भी उसे उखाड नही सकते और कोई भी शक्ति उसे कुचल नही सकती ।

अर्धशिक्षित

जैसे पत्थर की गाय दुही नही जा सकती, लकडी के घोडे पर यात्रा नही की जा सकती और प्लास्टिक के फूलो से सुगध नही ली जा सकती, वैसे ही विद्या और धन के अहकारी व्यक्ति को उपदेश नही दिया जा सकता ।

मेरा अनुभव है—अशिक्षित और गरीव व्यक्ति जितनी सरलता से समझता है और उपदेश पर आचरण करता है, अर्धशिक्षित और धनी मानी (धन के अहकार से युक्त) व्यक्ति उतनी ही कठिनता से समझता है । चूँकि उन्हे अपनी विद्या और धन का अहकार जो होता है ।

इच्छाओ की पूर्ति

जैसे कोई भी समझदार व्यक्ति छलनी मे दूध दोहने का प्रयास नही करता, वैसे ही ज्ञानी और विवेकी व्यक्ति इच्छाओ की पूर्ति करने का वाल-प्रयत्न नही करते, किंतु उन्हे शात करने का प्रयत्न करते है, जैसे कि समझदार चलनी के छेदो को भरने का प्रयत्न करता है।

दो बातें छोड़िए

एक सत से किसी ने कहा—जीवन का विकास करने के लिए आप कुछ उपदेश दीजिए।

सत ने कहा—दो वातें छोड दीजिए और दो बाते अपना लीजिए।

दो बाते कौन सी छोडे ?

—पर निन्दा और आत्मप्रशसा

दो वाते कोन-सी अपनाए ?

—आत्मनिंदा और पर-गुण-प्रशसा

पत्नी का आदर्श

विवाह एक सामाजिक दायित्व है। वह सिर्फ दो शरीरो का मिलन ही नही, किंतु दो मानव आत्माओ का मिलन है।

ऋगवेद का एक सूक्त है—

जाया विशते पतिम्— ऋग्वेद १०।८५।२९

योग्य पत्नी पति के अन्तर मे प्रविष्ट हो जाती है। इसका अर्थ है, पत्नी पति के मन, वचन एव कार्य के साथ एकाकार होकर जीवन की यात्रा में सम्पूर्ण सहयोगिनी वनती है।

इसी दृष्टि से जैन सूत्र उपासगदशा मे कहा गया है—"धम्म सहाइया, धम्मविइज्जिया—समसुह दुक्ख-सहाइया'—पत्नी, पति को धर्म मे सहायता करने वाली, धर्म की साथी और सुख-दुख मे वरावर

[illegible] होती है।

क्या आज की पत्नी अपने उस आदर्श को निभाती है? उसके लिए यह प्रश्न चिह्न लगा है...?

धनार्थी के चार गुण

एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री से किसी ने पूछा—धनवान बनने के लिए किन-किन गुणों की जरूरत है?

उत्तर में अर्थशास्त्री ने बताया—धनवान बनने के लिए मनुष्य को चार गुण सीखने चाहिए। भैंसे (गैंडे) के समान खाल, ऊंट के समान भोजन, गधे के समान काम और कुत्ते के समान सोना।

१. भैंसे की खाल पर चाहे जितनी चोटें पड़ें, पर उस पर उनका कोई असर नहीं होता, वैसे ही धनार्थी को कष्टों की चाहे जितनी चोटें पड़ें, [illegible] बर्दाश्त करना चाहिए।

२. ऊंट भोजन के लिए कहीं रुकता नहीं, जहां पर भी मार्ग में कोई पेड़ आया, मुंह मारा और आगे चल पड़ा। धनेच्छु व्यक्ति को भी खान-पान की चिन्ता छोड़कर अपने लक्ष्य की ओर चलते रहना चाहिए।

३. गधा काम करते हुए कभी थकता नहीं, वैसे ही धनार्थी को अविरत श्रम में जुटे रहना चाहिए।

४. कुत्ते की नींद सजग होती है। धनार्थी कभी गहरी नींद नहीं सोता, [illegible] उसे अपने धन की चिन्ता रहती है।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

चूँकि दो अकेली स्त्रिया साथ नही रह सकती , किंतु एक पुरुप की छाया में दो स्त्रिया प्रेम पूर्वक साथ रह सकती है। मै ऐसे पुरुप का वरण करना चाहती हू जो विद्वान भी हो, पुरुपार्थी भी हो।

सचमुच बुद्धिमान उद्योगी पुरुप ही लक्ष्मी का स्वामी बन सकता है।

मैंने देखा

जव-जव मैंने—ककरीट और मोजक के फर्श को मशीना द्वारा घिसते हुए देखा,

जव-जव मैंने—हीरो को शान पर चढकर कटते देखा,

जव-जव मैंने—सोने को कसौटी पर कसते देखा,

जव-जव मैंने—अगरवत्ती को जलाकर सुगधि फैलाते देखा,

तव-तव मेरे चिन्तन सूत्र झनझना कर कह उठे—जीवन मे कष्ट सहे विना चमक नही आती, तपे विना तेज नही निखरता और जले विना सुगध नही फैलती।

कृत्रिमता

मनुष्य ने प्लास्टिक के सुन्दर रग-विरगे फूल वनाकर अपने गमले सजाने की कल्पना से मन को छलना तो सीख लिया, पर उनमें सौरभ पैदा करने मे वह आज तक असफल रहा है।

जीवन के दु.ख-दर्दो पर कृत्रिम हास-परिहास व मनोरजन के आकर्षक आवरण डालकर उन्हे भुलाने की कौशिश तो वह कर सका है, पर उनमे आत्म-परितृप्ति की सुखद अनुभूति का स्पर्श नही जगा सका।

दैत्य और देव

पौराणिक गाथा के अनुसार—दिति दैत्यो की जननी है, अदिति-देवो की।

जो अपनी ही आकाक्षा और वासना के पोपण एव पूर्ति करने मे लगा है—वह दिति का पुत्र—दैत्य है। क्षुद्रता दिति की सतान है।

जो अपने अस्तित्व को समग्र मे मिलाकर दूसरो के भरण-पोषण एव रक्षण के लिए पुरुषार्थ करता है, वह अदिति का पुत्र है—देव। विराट्ता—भूमा यही देवता का रूप है।

यो वै भूमा तत्सुखम् —छादोग्य० ७।२३।१

जो विराट्ता है वही सुख है।

पाप्मा वै वृत्र—

जो अल्पता (क्षुद्रता) है, वह पाप है, वही वृत्र नामक असुर है।

नारी

नारी, शील एव ममता—दया की मूर्ति है, वह पुरुप को अपने उज्वल चरित्र से प्रेरणा देती है, सहिष्णुता एव त्याग का पाठ पढाती है।

एक वार महर्षि रमण से किसी ने नारी के सम्बन्ध मे विचार प्रकट करने को कहा, तो सीमित शब्दो में असीम अर्थ व्यक्त करते हुए रमण वोले—"पति के लिए चरित्र, सतान के लिए ममता, समाज के लिए शील, विश्व के लिए दया, तथा जीव मात्र के लिए करुणा सँजोने वाली महाप्रकृति का नाम ही नारी है।"

सुख का मूल

ससार के समस्त सुखो का मूल है—धर्म! धर्म की जड हरी रहने से पुण्य की शाखाए फूटती है, उन पर अनेक प्रकार के सुख, यश, आदि के फल फूल खिलते है।

पडितराज जगन्नाथ ने कहा है—

लभ्यते पुण्यैर्गृहिणो मनोज्ञा

तया सुपुत्राः परित पवित्राः।

स्फीतं यशस्तै समुदेति नित्य
तेनास्य नित्यः खलु नाकलोकः ।
—भामिनी-विलास

—पुण्य से सुन्दर स्त्री मिलती है, स्त्री से सच्चरित्र सुपुत्र होते है, पुत्रो से विमलयश का दिन-दिन उदय होता है, और यश से यह लोक, स्वर्ग-लोक तुल्य हो जाता है।

साधना

अभ्यास और साधना से असाध्य भी साध्य वन जाता है, कटु भी मधुर लगने लगता है।

कविवर वेमन्ना की एक प्रसिद्ध कविता है—

अनग ननग राग मति शयिल्लुचु नुंडु
तिनग तिनग वेगुं तिय्य नुंडु
साधकमुन बनुलु समकूरु बरलोन
विश्वदाभिराम विनुर वेम ।

—आपस का सम्वन्ध बढ जाने से प्रेम भी अधिक हो जाता है, नीम का पत्ता भी खाते-खाते मधुर लगने लगता है। वैसे ही साधना करते रहने से ससार में समस्त कार्य साध्य हो जाते है।

आलोचना की कसौटी

आलोचना करना मनुष्य का स्वभाव नही, गुण होना चाहिए। जो दूसरो के हित के लिए आलोचना करता है, उसका अन्तर्मन स्वयं उस आलोचना से प्रसन्न नही होता, किंतु कर्तव्य मानकर कटु को भी नीम की तरह प्रयोग करना पडता है।

आलोचना करना जव स्वभाव वन जाता है, तो उसमें दूसरो के हिताहित की वुद्धि नही रहती, किंतु एक शौक पूरा करने के लिए, आदतन वह आलोचना की जाती है, जैसे शराबी तीक्ष्ण गध की शराब भी आदत से मजवूर होकर पी जाता है।

एकबार प्रसिद्ध लोक-शास्त्री डेल कार्नेगी से किसी ने आलोचना की कसौटी पूछी तो कार्नेगी बोले—"मित्रो की आलोचना करते हुए यदि अपने मन को सताप पहुचता है, तो आप उनकी आलोचना करना बद न कीजिये, जो कहना हो निर्भय होकर कहिये, किंतु यदि आपको कभी उनकी आलोचना मे रस आने लगे, तो कृपया तत्काल अपनी वाणी पर लगाम लगा दीजिये।"

दिवालिया

ससार मे वह व्यक्ति सबसे बडा दिवालिया है, जिसने इज्जत का दिवाला निकाल दिया। उससे भी बढकर वह व्यक्ति दिवालिया है, जिसने अपने आत्म-विश्वास का दिवाला निकाल दिया है।

सुखी होने का

एक विद्वान से एक सम्राट ने चार प्रश्न पूछे
सुखी होने का मुहूर्त ?
सुखी होने का स्थान ?
सुखी होने का मार्ग ?
सुखी होने का साधन ?
विद्वान ने छोटे से चार उत्तर दिए—
सुखी होने का मुहूर्त—सदैव है।
सुखी होने का स्थान—सर्वत्र है।
सुखी होने का मार्ग—सेवा है।
सुखी होने का साधन—सद्वृत्ति है।

पुरुष-स्वभाव

रामायण मे एक प्रसग है—सीता अयोध्या पहुचने पर राम को खरी-खरी सुनाती है—

> पुरिस णिहीण होति गुणवंत वि
> तियहेण पत्तिज्जति मरत वि— —पउमचरिय (सयम्भू)

—पुरुप भले ही गुणवान हो। पर वे महानीच स्वभाव के होते है।

स्त्री उनके लिए मर जाय लेकिन उनको उस पर कभी विश्वास नही होता।

अपने विषय मे कही गई गीता की इस उक्ति पर पुरुषो को आज भी आत्म-अवलोकन करना चाहिए।

भार-आभार

धन, मान, सम्मान और ज्ञान—इनके साथ जब मनुष्य का 'अहं' जुट जाता है तो वे उसी के लिए बोझ बन जाते है और मनुष्य उन्हे सिर पर लादे फिरता है। किन्तु जब ये 'परहित' की भावना के साथ जुड जाते है तो मनुष्य उनके भार से मुक्त हो जाता है, भार जगत के लिए 'आभार' बन जाता है।

सांप का स्वभाव

एक कहावत है—"कजूस मनुष्य सांप की तरह अपने खजाने की रक्षा करता है।"

जिसके पास सपत्ति है, और उसके वितरण से अनेक मनुष्यो को लाभ मिल सकता है, किंतु धनासक्ति, तृष्णा और कजूसी के कारण जो उसका कोई उपभोग या उपयोग नही कर सकता, सचमुच उसके स्वभाव की तुलना सांप से की जा सकती है।

एकबार चदन के वृक्ष ने अपने तन से लिपटे साप से क्रोधपूर्वक कहा—"क्या स्वभाव है तुम्हारा, जो भी कोई अच्छी चीज मिले उस पर अधिकार जमाकर बैठना जानते हो, देखो, यह मणि, कितनी मूल्यवान है, कितने दरिद्रो की गरीबी दूर कर सकती है, कितने भूखो को भोजन दे सकती है, पर उसको शिर पर रखे फन फैलाकर बैठे हो! और तो क्या, मेरे तने से आकर भी लिपट गये, कोई मेरी सुगध पाने को मेरे तक आना चाहे तो बीच में तुम क्यो फुकार रहे हो? सुगध मेरी सपत्ति है, लेनेवाले को तुम क्यो नही लेने देते?

सांप ने तने से अपनी पकड गहरी करते हुए कहा—भाई! क्या कहूँ, मेरा स्वभाव है, कुदरत ने मुझे सपत्ति का रक्षक बनाकर भेजा

है, दाता नही। कोई किसी को कुछ देता है तो वह मुझ से बर्दाश्त नही होता।

विचित्र-शौक

मनुष्यो की रुचि और शौक भी बडे विचित्र और विभिन्न प्रकार के होते है। आचाराग सूत्र मे एक वाक्य है—

पुढो छदा इह माणवा

—मनुष्यो का स्वभाव, इच्छाए पृथक्-पृथक् व विचित्र होती है। महाकवि कालिदास ने भी जन-रुचि की विचित्रता पर कहा है—

विभिन्नरुचयो हि लोकाः

—विश्व के सभ्य और विद्वान कहे जानेवाले ऐसे लोगो मे भी रुचि-वैचित्र्य देख-सुन कर स्वय विचित्रता झुक जाती है।

फ्रासिस बेकन को यह खफ्त था कि जब आकाश मे बादल मँडराते, जोर से बू दे पडती, तो वह खुली गाडी मे बैठकर सडक़ पर घूमने निकल जाता।

फ्रास का विख्यात लेखक एमिलजोलो जब सडक पर चलता था, तो गैस बत्तियो के खभे गिना करता था। और प्रसिद्ध उपन्यास लेखक अलेक्जडर ड्यूमा रग-बिरगे कागजो पर लिखने का शौकीन था। वह नीले कागज पर उपन्यास, पीले कागज पर कविता और गुलाबी कागज पर लेख लिखा करता था।

अग्रेज कवि शैली—जब कभी क्राति की भावनाओ मे बहता तो देश मे फैली कुरीतियो के विरुद्ध पर्चे लिखता और उन्हे बाद मे बोतलो मे बद करके बहा देता।

इस प्रकार मानव स्वभाव की विचित्रता-उसके जीवन एव चिंतन की विचित्रता का कारण होती है।

भारतीय समाजवाद

भारतीय सस्कृति प्रारभ से ही समाजवाद की पृष्ठपोपक रही

है। उसका चिंतन व्यक्तिपरक नही, समाजपरक रहा है। उसका सकल्प रहा है—

सगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्

—ऋग्वेद १०।१९१।२

—हम सब साथ-साथ चले, साथ-साथ बोले, एक दूसरे के मन को पहचाने, जीवन की उन्नति के लिए मिलकर प्रयत्न करे।

अपने साधनो का अकेला उपभोग करने वाला यहा पापी और अधम माना गया है—

केवलाघो भवति, केवलादी —ऋग्वेद १०।११७।६

—जो अकेला ही अपना भोग करता है वह पाप का भोग करता है।

भगवान महावीर ने भी इसी स्वर को मुखरित किया है—

छदिय साहम्मियाण भुंजे। —दशवै०

—अपने सहधर्मियो को आमत्रित कर उन्हे खिलाकर फिर खाओ।

असंविभागी न हु तस्स मोक्खो— —दशवै०

जो सविभाग नही करता, साथियो को वाटता नही, उसको मोक्ष नही मिलता।

महाकवि विद्यापति ने कहा है—

इह भुवने कः शोच्यः सत्यपि विभवे न यो दाता।

—ससार में सवसे दयनीय कौन है? धनवान होकर भी जो कजूस है।

नीतिद्रष्टा विदुर ने तो इससे भी वडी वात कह दी—

जो धनवान होकर अकेला ही उसका उपयोग करता है, दूसरो को वाटता नही, और जो विद्वान होकर विद्या का दान नही करता। इन दोनो के गले मे शिला वाधकर समुद्र मे डुवो देना चाहिए—

द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले वद्ध्वा दृढां शिलाम्।

ब्राह्मणं चाप्रवक्तारं धनवन्तमदायिनम्।

असली शस्त्र—मनुष्य

सस्कृत के एक आचार्य ने कहा है—

"क्रियासिद्धि: सत्वे वसति महता नोपकरणे"

—सत्पुरुषो की क्रिया की सिद्धि उनके साहस एव आत्मवल में है, न कि बाह्य उपकरणो मे। विकराल दैत्य-राक्षसो के स्वामी रावण को साधारण शस्त्रधारी राम ने केवल मुट्ठी भर वदर सेना को लेकर भी पराजित कर दिया था।

फील्डमार्शल माटगोमरी ने एक बार कहा था—

"दुनिया का वढिया मे बढिया टैंक भी वेकार है, यदि उसमे बैठे कर्मचारी अच्छी तरह प्रशिक्षित तथा धीर एव वीर नही हैं। युद्ध मे विजय के सबसे वडे कारणो मे से एक है मनुष्य।"

वास्तव मे साधन का उतना महत्व नही, जितना साधक के मनोवल एव विवेक का है। कुशल साधक जो काम तिनके से कर सकता है, अकुशल साधक वह काम तलवार और तोप से भी नही साध सकता।

साधनो की कमी का रोना वही रोता है जो कार्य सपादन मे अकुशल होता है। गाधी जी कहते थे—"अच्छा कारीगर कभी औजार को दोष नही देता। वह खराब और कमजोर औजार से भी आश्चर्यजनक निर्माण कर देता है।"

अपर्याप्त साधन, अनिपुण सहयोगी, और अकृतज्ञ समाज का वहाना छोडकर जो दृढसकल्पपूर्वक अपने काम मे जुट जाता है, उसके लिए साधन, सहयोगी और समाज—स्वय तैयार हो जाता है। आखिर कार्य सिद्धि का असली शस्त्र—तो मनुष्य स्वय है।

सत्कर्म का दीप जलाओ!

घर में घोर अधेरा छाया हो, और अधेरा भूत बनकर जैसे हमे निगलने आ रहा हो और हम चिल्लाने लगे—हाय, घोर अधेरा है,

भय लग रहा है ?"' तो क्या अंधकार दूर हो जायेगा ?

हा, अधकार दूर हो जायेगा और आपके घर मे भूतो की छाया की जगह देवताओ के दर्शन होने लगेगे, मगर कब, जब एक दीपक जलायेगे ! प्रकाश विहस उठेगा ।

जीवन के घोर अधकाराच्छन्न अन्तरगृह में सत्कर्म का दीप जलाइये, सद्भावो की बाती, और साहस का तेल डालिए—बस, जन्म-जन्म का अधकार दुम दवाकर भाग जायेगा और प्रकाश से आपका मानस-लोक जगमग कर उठेगा ।

सफलता का खजाना

सफलता मिट्टी में गड़े उस खजाने की तरह है, जिस पर सकटो का काला नाग अपने फन फैलाकर बैठा है। जो समझदारी और कठोर परिश्रम के साथ इस काले नाग का मुकावला कर सकता है, वही ससार मे सफलता का खजाना प्राप्त कर सकता है ।

सुअवसर

समय का अनन्त सागर लहरा रहा है, कोई आर-पार नही है इसका । किंतु इस सागर का स्वामी वही हो सकता है, जो इसमे छिपे सुअवसर के मोती निकाल कर मालामाल हो जाय ।

महाकवि इकवाल का एक शेर है—

> वही है साहवे-इमरोज जिसने अपनी हिम्मत से ।
> जमाने के समंदर से निकाला गोहरे-फर्दा ।

—आज का मालिक वही है, जिसने हिम्मत करके जमाने के सागर से कल का मोती निकाल लिया ।

व्यवहार

अथर्ववेद की एक सूक्ति है—

> देवाः पुरुषमाविशन् —११।८।१३

– सभी देव (दिव्यशक्तिया) पुरुष में निवास करती है। दूसरी दृष्टि से जब सोचता हू तो लगता है सभी दानव (क्रूर भावनाए) भी पुरुष के ही भीतर निवास कर रही हैं।

वास्तव मे पुरुष-मानव-भावना का ही एक पिंड है, जैसी उसकी भावना होती है, वह वाहर मे उसी रूप मे उपस्थित हो जाता है। धन, सत्ता, अधिकार और सम्मान एव ज्ञान के आवरण उसके सही रूप को ढक नही सकते। इन सभी आवरणो को ओढे हुए भी पुरुष अपने व्यवहार मे पूर्णत प्रकट हो जाता है।

जीवन-रस

जीवन आनन्द का एक अक्षय रस स्रोत है। इस रस-स्रोत का मानव अधिक-से अधिक रस-भोग करता है और प्रफुल्लित बना रहता है।

यह रस क्या है ? स्नेह, ममता, करुणा, सद्भाव एव सत्कर्म-ही जीवन का यह रस है। यदि यह रस-स्रोत सूख गया तो फिर जीवन रसधार न रहकर, सूखी नदी की तरह भयानक रह जायेगा—जो न तैर कर पार की जा सकती है और न चलकर।

जीवन में सत्कर्म का रस वहाते रहिए और उसका आनन्द भोगते रहिए।

श्रम की खाद

सफलता के बीज जीवन की भूमि पर चारो और विखरे पडे है, वे उसी जीवन मे अकुरित हो सकते है, जिसमें श्रम की खाद मौजूद होती है।

सफलता के वृक्ष को अकुरित करने के लिए श्रम की खाद और समझदारी का पानी दीजिये। सफलता अपने आप—स-फलता प्राप्त करेगी।

एक चाबी

इंगलैंड के महाराजा जार्ज का राज-प्रासाद 'बकिंघम-पैलेस' के नाम से विश्व-विश्रुत है। ससार की सुन्दरतम श्रेष्ठ वस्तुए और आधुनिकतम सुख-सुविधा के साधन इस विशाल राजप्रासाद मे विद्यमान है।

कहते है—इस राजप्रासाद में हजारो कमरे है, और सब पर अलग-अलग ताले लगे है। पर सम्राट के पास एक ऐसी विशिष्ट चावी है, जिससे राजप्रासाद के समस्त कमरे आसानी से खोले जा सकते है।

मैं सोच ही रहा था कि एक बात मेरे मन मे स्फुरित हो उठी—मानव जीवन की अमूल्य सम्पत्ति भी एक ऐसे ही विशाल राज-प्रासाद मे विद्यमान है, जिसका प्रत्येक कमरा खुल सकता है—केवल एक ही चावी से !

वह एक मात्र चावी क्या है ?

निश्छल स्नेह से आपूरित हृदय !

पर-निंदा

दूसरो की निंदा और नुक्ताचीनी करनेवाला—अपने कार्य मे कभी सफल नही हो सकता, चूँकि उसकी सारी शक्ति तो दूसरो की कमिया देखने मे ही लगी रहती है, निर्माण का अवसर ही उसे कहा मिलता है ?

राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन से एकवार एक जीवनी लेखक ने पूछा—"आपकी सफलता का मुख्य कारण क्या है ?"

लिंकन ने जवाब दिया—"मैं कभी दूसरो की नुक्ताचीनी कर दोहरा नुक्शान नही उठाता, इससे अपने समय की बर्बादी और दूसरो के दिल को चोट पहुचती है।"

सचमुच जो अपने कर्तव्य के प्रति सजग एव सक्रिय रहता है उसे दूसरो की निंदा करने का समय भी तो कहा है ?

तीन अमूल्य चीजें

एकवार प्रसिद्ध सत लाउत्जे से किसी ने पूछा—"आपके जीवन को महान् बनाने वाली क्या वस्तु है ?"

ला-उ-त्जे ने शातभाव से उत्तर दिया—"मेरे पास तीन ऐसी अमूल्य चीज है, जिनको मैं प्राणपण से रक्षा करता रहा हूँ। वे है—दया, मितव्ययिता और नम्रता। दयालु होकर मै वीर हो सकता हूँ। मितव्ययी होकर मैं उदार हो सकता हूँ और नम्र होकर मैं मनुष्यो का नायक बन सकता हू।"

आजकल लोग दया से विमुख होकर केवल वल की ही साधना कर रहे है, मितव्ययिता तज कर उदारता का नाटक रचते है और विनम्रता छोडकर केवल अधिकार पाने का प्रयत्न करते है। जीवन के विकट कष्टो और सघर्षो का यही तो मूल कारण है।

बालक-बैंक

एक सज्जन ने बहुत कजूसी करके धन जोडा और समस्त धन बैंको में जमा करके उसकी रसीदे देख-देखकर खुश हो रहे है, मित्रो व स्वजनो के सामने उस धन पर गर्वित हुए अपनी धनाढ्यता का बखान करते रहते हैं।

उन्ही के एक मित्र है, वडे सहृदय एव विचारक। मैंने मजाक में एक दिन उनसे पूछा—"आपके मित्र ने तो काफी धन बैंको मे जमा कर रखा है, आपने भी कुछ कर रखा है ?"

'मेरा वैंक यह है" अपने एक होनहार पुत्र की ओर सकेत करके वोले—"मैं अपने जीवन का समस्त ज्ञान, अनुभव, और सस्कार इसी बैंक मे जमा कर रहा हू, यह इन्हे अपने पास सुरक्षित रखेगा,

इन्हे बढायेगा और स्वय सुखी होगा, तथा अपने परिवार तथा समाज को भी इससे लाभ पहुंचायेगा।'

मैं कुछ क्षण गभीरतापूर्वक उस जीवित-बैंक को देखता हुआ मधुर भावो मे थिरक उठा—"सचमुच बालक ही सच्चा बैंक है।"

प्रतिष्ठा

शिष्य ने अपने गुरु स शिकायत करते हुए कहा—देव ! आपने कहा था कि जो व्यक्ति प्रतिष्ठा मे दूर भागने की चेष्टा करता है, प्रतिष्ठा उसके पीछे दौड़ती है। मैं पिछले इन बीस वरसो मे सदा से दूर भागता रहा हू, पर, प्रतिष्ठा तो मेरे पीछे कभी नही दौड़ी ?

गुरु ने कहा—"ठीक है ! मगर तुम्हारी नजर सदा इसी पर रहती होगी कि, देखे प्रतिष्ठा पीछे आ रही है या नही।?"

गुरु के उत्तर से शिष्य को अपनी प्रतिष्ठा-मूढता का भान हुआ।

सचमुच प्रतिष्ठा छाया की भाँति है, उसे पकडने की कोशिश करने से वह पकड मे नही आती, जो उससे मुँह मोडकर खडा हो जाता है, प्रतिष्ठा स्वय उसके चरणो मे आ बैठती है। लेकिन वह मुँह मोडना भी ईमानदारी के साथ होना चाहिए। सिर्फ दिखाने के लिए मुँह मोडनेवाला प्रतिष्ठा को नही पा सकता।

विज्ञान और सभ्यता

विज्ञान मस्तिष्क है, अध्यात्म हृदय है। जो विज्ञान मस्तिष्क को हृदय से अलग कर देता है, वह विज्ञान मनुष्यजाति का कल्याण नही कर सकता।

संस्कृति

सस्कृति अलग चीज है और दिखावट—जिसे सभ्यता कहा जाता है, वह कुछ और चीज है।

सस्कृति के साथ विशुद्ध नैतिकता और मानवता जुडी रहती है, जबकि सभ्यता केवल औपचारिकता का चोगा पहने रहती है।

एक सभ्य व्यक्ति के निकट हम खडे तो रह सकते है, पर सावधान होकर किंतु एक सुसस्कृत व्यक्ति के निकट एक सुन्दरी, एक अवोध वालक और एक श्रीमत एव गरीव भी निर्भय होकर खडा रह सकता है, जैसे अपने घर मे।

मनुष्य का हृदय

बगाली कवि नजरुल इस्लाम ने मानवहृदय की विराट्ता का दर्शन करते हुए लिखा है—

"मनुष्य के हृदय से महान् और कुछ भी नही है, मनुष्य का हृदय ही सब तीर्थो का आवास है। यही मन्दिर, मस्जिद, गिरजा, कावा, काशी और येरुसलम हैं।"

सचमुच मानवता का दिव्य देवता इसी हृदय मे छुपा रहता है। जैसे पत्थर की चट्टानो के भीतर भी निर्मल जल स्रोत छिपा मिलता है और बालू की अपार राशि के नीचे तैल के अपार स्रोत बहते है—

उसी प्रकार मानव के रूप मे इस हृदय के भीतर विश्व का अनन्त सौन्दर्य छिपा पडा है।

अव्यवस्था

मैं देखता हू, आजकल छोटे से छोटा काम भी भार बन कर मनुष्य के सर पर सवार हो जाता है। पाच मिनट के काम मे कई हफ्ते गुजर जाते है, फिर भी शिकायत यह है कि काम बहुत है, पूरा नही हो पाता।

मैं सोचता हू, आज मनुष्य के पास काम अधिक नही है, किंतु समय वहुत है। अधिक मे अधिक काम कम से कम समय मे निपटाया जा सकता है—यदि काम करने मे व्यवस्था और ईमानदारी हो।

जो लोग समय की कमी की शिकायत करते है, उनमें प्राय: काम करने की अव्यवस्था एव अस्थिरता की ही शिकायत मुख्य रहती है।

विज्ञान और प्रकृति

विज्ञान, यद्यपि प्रगति के चरम शिखर को छू रहा है, असभव को सभव बना रहा है, फिर भी वह प्रकृति से होड नही कर सकता, प्रकृति जो कुछ सहज रूप मे पैदा कर देती है, विज्ञान सिर-पच्ची करके और सारे साधन जुटाकर भी उसकी समानता नही कर सकता।

वनस्पतिशास्त्र के आधुनिक बृहस्पति डा० महेश्वरी के समक्ष एक बार इसीबात पर चर्चा चली तो उन्होने इस तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखा है—"दुनियां के बड़े से बड़े रसायनवेत्ता को सभी प्रकार के यत्र और उपकरण दे दो, उत्प्रेरक (केटलिस्ट) दे दो, मगर वह कार्बन डाइ आक्साइट और पानी से बहुत हुआ तो सोड़ावाटर ही पैदा कर सकेगा, जबकि पोधे कार्बन डाई आक्साइट और पानी जैसी मामूली चीजो से सहजतया भाति-भाति की शर्कराए तथा मड आदि खाद्यपदार्थो का निर्माण कर सकते है, जिन पर हमारा जीवन टिका है।"

जो विज्ञान प्रकृति के तुल्य निर्माण नही कर सकता, वह प्रकृति द्वारा निर्मित उपयोगी वस्तुओ का विनाश करे—क्या यह अन्याय नही है ?

मूर्खता के चार रूप

जो व्यक्ति यह मानता है कि अमुक चीज अच्छी है—क्योकि वह पुरानी है, वह मूर्ख है।

जो व्यक्ति यह मानता है कि अमुक चीज अच्छी है—क्योकि वह नई है, वह भी मूर्ख है।

जो व्यक्ति यह मानता है कि ससार मे मैं कुछ भी नही कर सकता क्योकि मै बहुत तुच्छ हू—वह भी मूर्ख है।

जो व्यक्ति यह मानता है कि ससार में मेरे विना कुछ भी नही हो सकता क्योकि सब कुछ मैं ही हू—वह भी मूर्ख है।

दुर्भाग्य के लक्षण

किसी तत्त्वज्ञानी से पूछा गया—क्या धन नष्ट होना, स्वास्थ्य चौपट हो जाना मनुष्य का दुर्भाग्य है।

तत्त्वज्ञानी ने कहा नही, यह तो प्रकृति का क्रम है, दुर्भाग्य के लक्षण तो ये है—

मूर्खो की सम्मति से चलना,
दुष्टो की सगति करना
सत्य से द्वेष करना
शुभकार्य मे प्रमाद करना
शक्तिशाली से विरोध रखना
मुख से असभ्य वाणी वोलना

जहा इन छह लक्षणो मे से सभी या कोई एक लक्षण दीखता है, तो समझना चाहिए वहा दुर्भाग्य के आगमन की तैयारी हो रही है।

क्रोध के प्रसंग पर विवेक

पहाडो की चिकनी एव ढालू भूमि पर भी जो अपने आपको फिसलने से बचा लेता है, वही तो सच्चा पर्वतारोही है।

क्रोध, लोभ, भय एव रोष के पतनोन्मुख मार्ग पर भी जो अपने को स्थिर रखकर जीवन की उच्चता के शिखर की ओर वढता जाता है, वही सच्चा जीवन यात्री है।

भारत के भू पू गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिग के जीवन का एक प्रसग है। सन् १६३१ मे किसी ने उन पर बम फैंका, लार्ड बाल-वाल

बच गये, हाथ को मामूली सी चोट आई थी। बम फेंकनेवाला पकडा नही गया, सेना ने भारतीयो को भून डालने के लिए तोपो का मुह खोल देना चाहा। तभी श्रीमतीहार्डिग ने सेनाधिकारियो को बुलाकर कहा—"एक आदमी के अपराध के लिए क्या हजारो निरपराधो की जान लेना ठीक है ? मै कहती हू, शस्त्र रख दो, और इस अत्याचार से अग्रेज जाति के मुँह पर कालिख मत पोतो।"

सेना ने अपनी तोपो का मुह बद कर दिया। श्रीमतीहार्डिग के सामयिक विवेक ने हजारो निरपराधो की जान बचाकर सच्ची समझदारी का परिचय दिया।

यह है क्रोध के प्रसग पर भी विवेक व क्षमा का अनुसरण !

शाति की पुकार

एक स्थान पर बहुत से व्यक्ति खडे शाति प्रार्थना कर रहे थे। सभी के मुंह पर शाति की पुकार थी—"शाति ! शाति।"

तभी एक दिव्य देवी आकाश मार्ग से उतरी। सबने सिर झुका कर प्रणाम किया। देवी ने आकाश मे स्थिर होकर कहा—"मेरा नाम है शाति ! आप लोग मुझे क्यो पुकार रहे है ?"

सभी के चेहरे प्रसन्नता से नाच उठे—"हा ! हम आपको ही पुकार रहे है, हमे शाति चाहिए ? आप हमारी भूमि छोड़कर कहां चली गई ? हमारी भूमि पर अवतरित होइए।"

शाति ने कहा—"मै तो तुम्हारी भूमि पर ही हू। पर बताओ तुम कौन हो ?"

पहले व्यक्ति ने दीर्घस्वर मे कहा—"मै हू महान् वैज्ञानिक !"

आगे बढकर दूसरा व्यक्ति बोला—"मै बहुत बडा उद्योगपति हू।"

तभी दोनो को पीछे ढकेल कर एक तीसरा आदमी आया—"मै हू कुशल राजनीतिज्ञ।"

तृतीय-किरण

विचार, चितन और विवेक—दीपक है। जीवन के अधकार-पूर्ण पथ पर यात्रा करनेवाला मानव-राही जब अज्ञान की ठोकरे खाता है, कुविचार के अधड मे घिर जाता है, और अविवेक की कालरात्रि मे भय व आशकाओ से प्रताडित होकर जब इधर-उधर भटकने लगता है, तब विचार-विवेक का दीपक उसके पथ को आलोकित करने टिमटिमाने लगता है। उसकी धुधली राह को चितन के प्रकाश से स्पष्ट और सुखमय बना देता है।

विचार-रश्मियाँ की तृतीय किरण मे विवेक व चितन के ऐसे ही दीप, पथ के हर मोड पर जलाकर रख दिये गये है, जिससे पथिक अपने पथ को स्पष्ट देख सके और सुखपूर्वक यात्रा सपन्न कर सके।

पथ के दीप

विचारो की गदगी

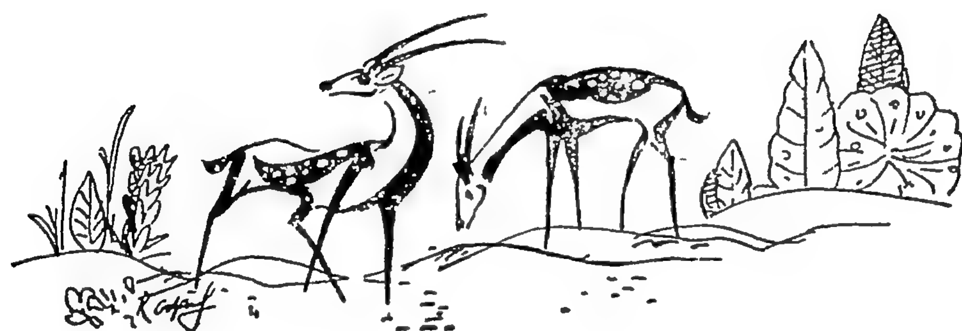
जिन व्यक्तियो की आर्थिकस्थिति ठीक नही है, उन्हे नगर के वाहर गदगी में झोपडी बनाकर रहना पडता है। उन झोपडियो के पास खुली गटरें वहती है। उनकी दुर्गन्ध से सिर फटने लगता है। गटरो मे कीडे कुलवुला रहे हैं, मच्छर भिनभिना रहे है। वे वहाँ रहना नही चाहते, पर उन्हे विवशता से रहना पड़ता है। पर भीतर की गदगी की ओर भी कभी ध्यान गया है ?

वाह्य गदगी उतनी भयानक नही है, जितनी अन्दर की गंदगी भयानक है। विचारो की गदगी समग्र जीवन को वर्वाद कर देती है। आश्चर्य है कि मनुष्य उसमे स्वेच्छा से रहना पसद करते है। पर इस गदगी से अधिक सावधान रहने की आवश्यकता है।

इस प्रकार अनेक व्यक्ति आये, और शाति को प्राप्त करने के लिए ललचाए हुए आत्म-परिचय देते गये ।

शाति ने सबकी प्रार्थना अस्वीकार करते हुए कहा—"तुम्ही तो मेरे हत्यारे हो ! मुश्किल से मैने तुमसे अपना पिड छुडाया था, आज फिर मेरी हत्या का षड्यत्र रचने यहा आये हो ?"

और फिर शाति एक सडक पर चलते सतोषी सद्गृहस्थ के पीछे-पीछे चल पडी ! "बस ! मैं तो इसी के साथ रहूँगी ।"



विचार-रश्मियां

पथ

के

दीप

है ? कही उपवास में पारणा की चिन्ता तो नही है ? सामायिक मे घर तो स्मरण नही आ रहा है ? जव तक साधना मे मानसिक एकाग्रता नही होगी तव तक साधना का आनन्द नही मिलेगा।

मृत्यु एक कला

मानव को यदि सवसे अधिक भय किसी से लगता है तो वह है—मृत्यु। मृत्यु का भय ही सवसे वडा भय है।

जिसने मृत्यु के भय को जीत लिया, उसने जीवन के रहस्य को समझ लिया। आप इस प्रकार जीवन जीएँ कि मृत्यु का भय ही न रहे। जिसे जीने मे आनन्द अनुभव होता है, उसे मृत्य भी मधुर लगती है। यदि जीवन रसमय है तो मृत्यु नीरस किस प्रकार होगी ? मृत्यु एक कला है, उस कला का अभ्यास करो।

साधना के काटे

फूल की अपेक्षा काटे अधिक है। मार्ग की अपेक्षा अवरोध अधिक हैं। पथ लम्बा है। मजिल दूर है, यात्री ! चलने मे सावधानी रख। नही, तो ये तीक्ष्ण काटे तेरे पैरो को वीध डालेगे।

ये वाहर के काटे तुझे कदम-कदम पर दिखलाई दे रहे है, पर तेरे अन्दर के काटे तुझे दिखलाई नही दे रहे है। अन्दर के काटे तीन हैं—माया, लालसा और मिथ्याआग्रह। इन्हे आगम की भाषा मे 'शल्य' कहा है। इन काटो से जो सावधान रहता है, वही साधना की सड़क पर गति और प्रगति कर सकता है।

संग्रह : एक ग्रह है

सम्राट् सिकन्दर के अन्तर्मानस मे विचार-लहरिया तरगित हो रही थी कि मैं सम्पूर्ण विश्व पर अपनी विजय पताका फहराऊगा। वह अनेक देशो को जीत कर भारत आया। पौरस ने उसके अहकार को चकनाचूर कर दिया।

ने यह सोचा रहा कि उसने अपनी सीमित बुद्धि [illegible] से किसने
धन का उपयोग किया था ?

आज के अत्याधुनिक उत्तम बहुमंजिलें बनाते हैं, कुछ तो अधिक
महल बनाते हैं, कई मकान बनाते हैं, पर वे एक साथ कितने मकानों
में रह सकते हैं ? कितने कपड़े एक साथ पहन सकते हैं ? कितने
वाहनों का एक साथ उपयोग कर सकते हैं ? क्या वे भी निरर्थक
की तरह पुण्य नहीं कर रहे हैं ?

वे निरर्थक वस्तुओं का संग्रह कर रहे हैं। संग्रह इतना बढ़ा रहा
रहे हैं, जो साधक को आनन्द में नहीं रहने देता।

प्रेम

प्रेम निर्विकल्प है, निःस्वार्थ है, अनासक्त है। देह में रहते हुए
भी देह से भिन्न रहने का है, अतः निर्विकारी है।

सच्चा प्रेम अधिकार नहीं, अस्तित्व की चाहत है। वह अपने
निर्बुद्धजनों को पसन्द करता है। वह प्रेम की अंतिम ऊँचाई को
महत्व देता है। वह सम्पत्ति की नहीं, सच्चाई की चाहता है। वह
विवाद नहीं, विकास चाहता है। वह अधिकार नहीं, कर्तव्य को
महत्व देता है।

प्रेम के पास कोई इच्छा लालसा नहीं। देन-लेन के उसके मूल्य
जाते नहीं। उसका सरल मार्ग है और अत्यन्त अमर हृदय है।

प्रेम ऐसा दुर्ग है कि जो जितना अधिक दिया जायेगा उतनी
अधिक उसमें से दुगुना स्फूर्ति होगी।

सच्ची सेवा

सच्ची सेवा है ऐसे हजारों व्यक्तियों की, जिनका एक दूसरे से
परिचय होता है। वे उस व्यक्ति से जीवन भर मिलते नहीं, एक दूसरे
को पहचानते नहीं जानते, किन्तु उनके मरने पर वे उनकी स्मृति-

यात्रा मे जाते है। उनके शव को उठाते है। उनके मरने पर रोते भी हैं। जीवन मे जो अकेले थे, मृत्यु के वाद उनके लिए मेला लग रहा है।

मै सोचता हू यह क्या नाटक है ? जीते जी उसे किसी ने सहयोग नही दिया, और अव सहयोग देने के लिए दौड रहे है। जीते जी तो किसी ने वूझा ही नही, अव मरने पर उनकी पूजा हो रही है।

आवश्यकता है जीवन के भार को हलका करनेवाले मानवो की। जीते जी आसू पोछनेवाले व्यक्तियो की। लाश को नही, जीवित व्यक्ति की सेवा करना ही सच्ची सेवा है।

प्रारब्ध और पुरुषार्थ

मै समुद्र के किनारे खड़ा था। मन मे प्रश्न उठा—प्रारब्ध और पुरुषार्थ मे महान् कौन है ?

उसी समय मेरी दृष्टि सामने खडी हुई एक नौका पर गई। उसमे दो डाड रखे हुए थे। नाविक ने एक डाड हाथ मे लिया और उसे ज्योही घुमाया त्योही नौका पानी मे चक्कर लगाने लगी। उसने वह डांड रख दिया। दूसरे डाडे को हाथ मे लिया और उसे घुमाने लगा। नौका विपरीत दिशा मे घूमने लगी तभी नौका मे वैठे हुए वृद्ध नाविक ने कहा वेटे। कही एक डाडे से नौका चलती है ! वृद्ध नाविक ने दोनो डाडे हाथ मे लिये और एक साथ पानी मे घुमाए। नौका अपने लक्ष्य पर दौडने लगी।

इस दृश्य से मेरे मन का समाधान हो गया। जव दोनो डाडे साथ चलते है तभी जीवन प्रगति करता है। जीवन मे प्रारब्ध और पुरुपार्थ दोनो का ही महत्त्व है। जो एक को महत्त्व देते है, वे प्रगति के पथ की सही दिशा मे वढ नही सकते।

सन्तोष की स्वर्णमुद्राएँ

एक राजा ने प्रतिज्ञा की कि प्रभात के पुण्य-पलो मे जो भी मेरे

महल के द्वार को प्रथम बार खटखटायेगा, उसका पात्र मै स्वर्ण-मुद्राओ से भर दू गा।

राजा के यहा जो भी आता वह अपना पात्र भर कर हँसता और मुस्कराता हुआ लौट जाता। जन-जन की जिह्वा पर ये शब्द नाचने लगे, राजा तो अनेक देखे, पर ऐसा दानवीर नही देखा। कोई भी इसके द्वार से निराश होकर आज तक नही लौटा।

एक दिन एक भिक्षुक ने राजा का द्वार खटखटाया। राजा ने द्वार खोलकर भिक्षुक का स्वागत किया और उसके पात्र मे स्वर्ण-मुद्राए डालनी प्रारभ की। राजा एक के पश्चात् एक मुद्रा डालता रहा था, पर पात्र भर ही नही रहा था। राजा के आश्चर्य का पार न रहा। उसने धीरे से विनयपूर्वक पूछा—योगीराज! आपका पात्र तो निराला है, इतनी स्वर्णमुद्राए डालने पर भी यह नही भरा है। बताइए यह किस वस्तु का बना हुआ है ?

योगी ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—राजन्। यह पात्र मानव के मस्तिष्क की खोपडी का बना हुआ है। मानव को अब्जो की सम्पत्ति मिलने पर भी उसके मस्तिष्क मे शान्ति का सचार नही होता, वह तो अधिक से अधिक धनार्जन का प्रयास करता है। यह खोपडी भी सम्पत्ति से कभी भरने की नही है। सन्तोष की स्वर्ण-मुद्राए ही इसको भर सकती है।

अपना-अपना आग्रह

एक औषधालय मे सात जन्मान्ध व्यक्तियो ने चिकित्सा के लिए प्रवेश किया। एक अधे का हाथ डाक्टर के कमरे की खिडकी के काच के ऊपर लगा। उसने अपने साथियो से कहा—मेरा अनुमान है कि इस खिडकी के काच का रग नीला है।

दूसरे अधे ने उसकी बात का खण्डन करते हुए कहा—तुम्हारा कथन मिथ्या है। क्योकि मेरे नौकर ने मुझे कल ही बताया था कि खिड़की के काच का रग काला है।

तीसरे अधे ने जरा आगे वढकर कहा– तुम दोनो का कथन मिथ्या है, क्योकि मेरे पुत्र ने कहा है कि खिडकी के काच का रग सुनहरी है।

चौथे ने उसकी वात का भी खण्डन करते हुए कहा—मेरा पौत्र काच का विशेपज्ञ है। उसने मुझे कहा था कि खिडकी के काच का रग हरा है।

इसी प्रकार पाचवे ने लाल, तो छट्ठे ने पीला और सातवे ने आसमानी रग कहा।

सातो अधे आपस मे झगडने लगे। उसी समय डाक्टर अपने कमरे से बाहर आया और उसने कहा—क्यो झगड रहे हो! आप स्वय तो देख नही रहे हैं, दूसरे की बात को सुनकर अपने कथन की सत्यता सिद्ध करने के लिए वृथा आग्रह कर रहे है? आप जो कह रहे हैं, उन सभी रगो के काच मेरी खिडकियो मे लगे हुए है। आप सभी का कथन सत्य है, फिर झगड़ा क्यो?

सातो अधो को अपनी भूल ज्ञात हो गई और झगडा शान्त हो गया।

समाज और राष्ट्र मे भी इसी प्रकार के अधो की लडाई चल रही है। सभी अपनी-अपनी दृष्टि से सत्य को सिद्ध करना चाहते है, पर सत्य-तथ्य को समझना नही चाहते।

स्वावलम्बन की शिक्षा

अमेरिका के श्री हूवर का पुत्र कालेज मे पढता था। कालेज के समय के अतिरिक्त वह मकान-निर्माण का कार्य करता था। एक दिन वह अपने इस कार्य को कर रहा था, कि अकस्मात् एक खभा टूट गया और मकान गिर जाने से उसकी मृत्यु होगई।

प्रस्तुत घटना से हूवर को अत्यधिक आघात लगा। उसके स्नेही साथियो ने हजारो सान्त्वना के पत्र लिखे। उसने उन सभी पत्रो

का उत्तर पृथक्-पृथक् न देकर एक ही उत्तर दिया जो आलसी-व्यक्तियो मे प्रेरणा का सचार करता है—

मेरा पुत्र परिश्रम की महिमा का पाठ पढाते हुए मृत्यु को प्राप्त हुआ है। वह राष्ट्र के लाभ के लिए कार्य कर रहा था। मुझे आशा है, अमेरिका का हरेक युवक उसकी अकाल मृत्यु से श्रम और स्वावलबन का पाठ पढेगा।

जिस देश के व्यक्ति श्रम मे निष्ठा रखते है, स्वावलम्बी जीवन जीने का प्रयास करते है, वह देश प्रगति के पथ पर आगे बढता है। समृद्धि का मूल कोरे विचार नही, सुन्दर आचार है।

अमरत्व का मार्ग

एक स्थान पर पानी गर्म किया जा रहा था। उसमे गुलाब के फूल डालकर गुलाब जल और इत्र तैयार किया जा रहा था। दूसरे स्थान पर गुलकद बनाने के लिए ताजे फूल चुने जा रहे थे। पत्थर पर उन्हे पीसा जा रहा था।

एक चिन्तक ने उन फूलो से पूछा—तुममे मृदुता है, सौन्दर्य है, सौरभ है, तथापि तुम्हारी यह दशा क्यो ? तुम्हारे साथ मानव यह क्रूरता पूर्ण व्यवहार क्यो कर रहा है ?

फूलो ने वेदना को भूलकर मुस्कराते हुए कहा—मित्र ! हमारी ही नही, हमारे जैसे सभी हितचिन्तको की यही स्थिति होती है। मानव समाज की हमेशा से यही परम्परा रही है। उसने राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, ईसा, गाधी आदि सभी के साथ इसीप्रकार का व्यवहार किया है। वह ईर्ष्यालु है। वह दूसरे के सौभाग्य को सहन नही कर सकता। वह उसे किसी प्रकार से समाप्त करना चाहता है। पर वह भूल जाता है जिसे इस प्रकार मारा जाता है, वह मरता नही, अमर हो जाता है।

अन्दर देखो न !

योगी प्रवर आनन्दघन जी किसी गुफा में ध्यान कर रहे थे। चारों ओर प्राकृतिक सौन्दर्यसुषमा बिखरी हुई थी। कलकल छल-छल करते हुए झरने बह रहे थे, फूल खिल रहे थे। हरियाली फैली हुई थी। कुछ भावुक भक्त आनन्दघन जी की अन्वेषणा करते हुए उसी एकान्त-शान्त स्थान में पहुच गये। वहाँ की प्राकृतिक रमणीय छटा को निहारकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होने कहा—गुरुदेव ! यहाँ का वाह्य दृश्य बडा ही सुहावना है।

अध्यात्मरस मे तल्लीन आनन्दघनजी ने कहा—वाहर क्या देखते हो, अन्दर देखो न। वाहर के दृश्य से भी अन्दर का अदृश्य अधिक आकर्पक है। वाह्य दृश्यो की रमणीयता क्षणिक है। यहाँ वसन्त के साथ पतझड है, सर्दी के साथ गर्मी है, वर्षा के साथ सूखा है, पर आत्मा की रमणीयता शुक्ल पक्ष के चाद के प्रकाश की तरह निरन्तर वढती रहती है।

भक्त चरणों मे गिर पड़े।

कनेक्शन !

पावर हाउस के पास ही एक गरीव की झौपडी थी। हम लोग झौपडी के पास ही स्कूल भवन मे ठहरे हुए थे। रात्रि का घना-न्धकार चारो ओर फैल रहा था। हमने देखा—झौपडी मे एक नन्हा सा दीपक टिमटिमा रहा है।

झौपडी का मालिक सत्संग की दृष्टि से हमारे पास आकर वैठा। चर्चा के प्रसग मे ही मैंने उस सज्जन से पूछा—तुम्हारी वगल मे बहुत वड़ा पावर हाउस है, पर तुम्हारी झौपडी मे तो विजली नही है।

उसने कहा—मैं गरीव हू, पास होने पर भी मैंने कनेक्शन नही लिया है।

मैं चिन्तन की गहराई मे चला गया। पावर हाउस पास है, पर कनेक्शन न होने से इसे प्रकाश नही प्राप्त हुआ, पर जो पावर हाउस से मीलो दूर रहते है, कनेक्शन होने के कारण उनके भवन प्रकाश से जगमगाते है।

सद्गुण भी ज्ञान का पावर हाउस है। पर उस पावर-हाउस से वही ज्ञान का प्रकाश प्राप्त कर सकता है जिसने विनय का कनेक्शन लगा रखा है। विनय के अभाव मे सन्निकट रहने वाले भी ज्ञान के प्रकाश से वचित रहते है।

अगरबत्ती और मोमबत्ती

एक ओर अगरबत्ती जलकर अपने सुमधुर सौरभ से वातावरण को महका रही थी, दूसरी ओर मोमबत्ती जलकर अपना प्रकाश फैला रही थी।

मोमबत्ती ने अगरबत्ती से कहा—बहिन! तेरा शरीर तो काला कलूटा है। तू इतनी दुर्बल है मानो छह महीने से खाना ही न मिला हो। तेरे रूप को देखने की इच्छा हो नही होती। जरा, मेरा रूप तो देख! मैं कितनी सुन्दर हू। चादी के समान चमचमाती हुई मेरी काया है। मेरे निर्मल प्रकाश से सारा कमरा जगमगा रहा है।

मोमबत्ती अपनी बात पूरी भी नही कर पाई कि हवा का एक तेज झोका आया और मोमबत्ती बुझ गई। किन्तु अगरबत्ती का सौरभ चारो ओर पहले से भी अधिक फैल गया।

मै सोचने लगा कि अहकार कितना अस्थायी है। जो अहकार करता है उसकी स्थिति मोमबत्ती की तरह होती है और जिसमे विनय है, उसकी स्थिति अगरबत्ती की तरह। विरोधी उसको नष्ट नही कर सकते।

ज्वाला नहीं, ज्योति बनो

अग्नि के दो रूप हैं—ज्योति और ज्वाला। ज्योति प्रकाश करती है, ज्वाला जलाती है।

प्रेम ज्योति है और ईर्ष्या ज्वाला है। मानव ज्योति को विस्मृत करके ज्वाला में झुलस रहा है।

राजसभा मे एक से एक बढकर विद्वान् बैठे हुए थे। दार्शनिक, धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक चर्चाए चल रही थी। राजा ने उसी समय साइन बोर्ड पर एक रेखा खीची और आदेश दिया कि यह रेखा बिना मिटाए छोटी की जाय।

सभी विद्वान् विचारने लगे, कि यह रेखा बिना मिटाये छोटी किस प्रकार की जाय?

तभी एक विद्वान् आगे बढा। उसने हाथ मे चौक लिया। राजा ने कहा—विज्ञवर! आपको नियम तो स्मरण है न?

उसने स्वीकृतिसूचक सिर हिलाया, और राजा की खीची रेखा के पास ही दूसरी एक बडी रेखा खीच दी।

सारे सभासद स्तब्ध थे। राजा की खीची हुई रेखा उस रेखा के सामने नन्ही सी प्रतीत हो रही थी।

राजा ने उस पर भाष्य करते हुए कहा—दूसरे को मिटाकर स्वय बडे बनने मे बहादुरी नही है। दूसरा उसीप्रकार बना रहे, पर, अपने पुरुपार्थ से हम बड़े बने, अपना विकास करे, यही इसका रहस्य है।

आज के युग की सबसे बड़ी समस्या है मानव बड़ा बनना चाहता है पर, दूसरे को मिटाकर। जो दूसरो को मिटाता है वह स्वय मिट जाता है, दूसरो को मिटाकर नही, पर अपने सद्गुणो का विकासकर बडे बनो। ज्वाला नही, ज्योति बनो।

पवित्रकार्य

राजमार्ग पर हिन्दी साहित्य के एक यशस्वी लेखक महावीर प्रसाद द्विवेदी बढे चले जा रहे थे। उनके कानो मे एक हरिजन बाला का करुण क्रन्दन सुनाई दिया। उनके आगे बढते हुए कदम रुक गये। वे सीधे ही उस बाला के पास पहुचे। उसे एक काले साप ने डँसा था। जहर सारे शरीर मे फैल न जाय, एतदर्थ महावीर प्रसादजी ने अपने गले का यज्ञोपवीत चट से निकालकर उसके पैर में बाध दिया और चक्कू से सर्प के डँसे हुए स्थान को काट दिया। जिससे विषमिश्रित रक्त बाहर निकल गया। बाला पूर्ण स्वस्थ हो गई।

जब यह बात पुराणपथी ब्राह्मणो ने सुनी कि यज्ञोपवीत जैसी पवित्र वस्तु को हरिजन की लडकी के पैर मे बाधा गया तो उनका खून खौल उठा। उन्होने कहा—देखा, कलियुग का प्रभाव!

वृद्ध ब्राह्मण पच एकत्रित हुए। उन्होने महावीरप्रसाद जी को बुलाया और कहा—इस अपराध के कारण क्यो न आपको जाति से अलग कर दिया जाय?

महावीरप्रसाद जी ने उत्तर दिया—मै आप महानुभावो से प्रश्न करना चाहता हू कि यज्ञोपवीत पवित्र वस्तु है या अपवित्र?

सभी ने एक स्वर मे कहा—परम पवित्र वस्तु है।

महावीरप्रसाद जी ने दूसरे ही क्षण पूछा—तो बताइये, किसी प्राणी की रक्षा करना पवित्र कार्य है या अपवित्र कार्य है?

सभी नेताओ ने कहा—रक्षा करना पवित्र कार्य है।

तो यज्ञोपवीत के पवित्र धागे से मैने एक प्राणी की रक्षा का पवित्र कार्य किया है, इसमे क्या अपराध हुआ?

ब्राह्मण-पञ्चो के पास इसका कोई उत्तर नही था। वे सभी धीरे-धीरे खिसक गये।

कर्मों का विष

अध्यात्मयोगी आनन्दघन जी भगवान् कुंथुनाथ की प्रार्थना मे मन पर विचार करते हुए एक बहुत ही सुन्दर कहावत का प्रयोग करते है—

"सांप खाय ने मुखडुं थोथुं
ए ओखाणो न्याय।"

साप काट खाता है पर उसका पेट नही भरता है, अत मुंह थोथा है। किन्तु वह जिस व्यक्ति को काटता है, उसे तो विष चढता ही है। साराश यह है कि मन अनेक वस्तुओ मे जाता है। सकल्प-विकल्प करता है। जो सकल्प करता है तदनुसार ही कार्य होता नही है। अत मुंह तो थोथा का थोथा ही है, किन्तु आत्मा तो उन मलिन अध्यवसायो के कारण काला बन ही जाता है। उसे तो कर्मों का विष चढ ही जाता है।

अकर्मण्य

मैने देखा है—जिन इंजनो के कल-पुर्जे ढीले होते है, वे गति करने मे कभी सफल नही होते। जो पुर्जे कसे हुए और मजबूत होते है वे ही पुर्जे काम देते है। ढीलाई तो ढील से बनी हुई है, वहाँ पर स्फूर्ति नही।

प्रश्नोत्तरमणिमाला मे एक सुन्दर प्रश्न है कि जीते जी मरा हुआ कौन है ?

आचार्य ने उत्तर दिया है—जो अकर्मण्य है।

जीवन्मृतः कोस्ति ? निरुद्यमो यः।

प्रमाद

चिन्तकों ने प्रमाद की परिभाषा बहुत सुन्दर की है—अनुत्साहः प्रमाद—कर्तव्य के प्रति जो अनुत्साह है, वही प्रमाद है। प्रमादी

प्रतिपल-प्रतिक्षण विचारो मे ही गोते लगाते रहता है। उसके विचारो की स्टीम कभी गर्म ही नही होती, तो फिर एञ्जिन चालू होने का प्रश्न ही कहा है ?

श्रमण भगवान् महावीर ने कहा—उट्ठिए नो पमायए ! उठो, प्रमाद न करो।

प्रमाद जीवन का अभिशाप है। प्रमादियो के जीवन के अमूल्य क्षण उसी प्रकार व्यर्थ जा रहे है, मानो किसी उन्मत्त मानव की फटी हुई जेब मे से बहुमूल्य हीरे, पन्ने, माणक और मोती गिर रहे हो ! पर, उसे इसका पता ही नही है।

अन्तर्मुखी बन

उपनिपदो मे एक वाक्य आया है—'पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भू" स्वयभू ने इन्द्रियो को बहिर्मुख बनाया है। इसी कारण वे बाह्य पदार्थो को ग्रहण करती है। कान बाहर के शब्दो को सुनते है, नेत्र बाह्य दृश्यो को देखते है, नाक बाहर के सुगध और दुर्गन्ध को ग्रहण करती है। रसना बाह्य पदार्थो को चखती है। स्पर्श बाह्य पदार्थों को अनुभव करता है। बाह्य विषयो के ग्रहण करने से हमारी वृत्तिया बहिर्मुख हो गई है। हमें अन्तर की सूझती ही नही है।

सन्त दादू ने सत्य ही कहा है—जो साधक बाहर की आवाज सुनता है, वह अन्दर की आवाज नही सुन सकता। जो बाह्य दृश्यो को देखता है, वह अन्दर के दृश्यो को नही देख सकता। जो बाह्य गध का रसिक है, वह अन्दर की गध को प्राप्त नही कर सकता। जो बाह्य रसो का लोलुपी है, वह अन्दर का स्वाद नही ले सकता। जो वाह्य स्पर्शो मे आसक्त है, वह अन्तर का स्पर्श नही पा सकता। अत वाह्य वृत्तियो को छोडकर अन्तर्मुख बनो।

अध्यात्मका एक ऐसा मजीठ रग है, जो एकबार लग जाय तो

फिर कभी उतरता नही। पर, प्रश्न यह है कि वह रग लगे किस प्रकार ?

अज्ञान, ज्ञान, और विज्ञान

स्वामी रामकृष्ण परमहस ने एक बार कहा था—केवल सुनी सुनाई बात का ज्ञान अज्ञान है, प्रत्यक्ष देखी हुई वस्तु का ज्ञान, ज्ञान है और अनुभव की हुई वस्तु का ज्ञान, विज्ञान है।

किसी व्यक्ति ने लड्डू का नाम सुना है, किन्तु न आखो से देखा है और न कभी खाया ही है, यह अज्ञान अवस्था है।

लड्डू को प्रत्यक्ष देख लेना यह ज्ञान अवस्था है और उसका सम्यक् प्रकार से रसास्वादन कर लेना यह विज्ञान अवस्था है।

विज्ञान का नाम ही अनुभवदशा है। उसकी स्थिति अत्यन्त विलक्षण होती है। उसे शास्त्र की आवश्यकता नही होती, उसकी वाणी ही स्वय शास्त्र बन जाती है।

वाद-विवाद अज्ञानियो के लिए है। ज्ञानियो को उसकी अपेक्षा नही होती। जिसके मुह मे रसगुल्ला है, क्या वह रसगुल्ले के स्वाद को लेकर वाद-विवाद करेगा ?

अनुभवियो की भाषा, परिभाषा भिन्न हो सकती है, पर भाव भिन्न नही होते। किसी ने सहकार कहा, किसी ने आम, और किसी ने मेगो ! बताइए क्या स्वाद मे अन्तर होगा ?

कठोरता

एकदिन जामुन ने अगूर से कहा—भाई ! मै एक बात तुम से पूछना चाहता हू, बताओगे ?

अगूर ने कहा जो भी तुम्हे पूछना है सहर्ष पूछ सकते हो ?

जामुन बोला—बताओ भाई ! तुम्हारे दानो को लोग सहर्ष खाते

है किन्तु मेरी गुठली को वेरहमी के साथ बाहर थू क देते है। इसका क्या रहस्य है ?

मुस्कराते हुए अगूर ने कहा—भैया ! नाराज न होना, कठोर दिलवालो की हमेशा यही दशा होती है।

कम समझदार

मैंने अनेक वार अनुभव किया है कि जो व्यक्ति कम समझदार होते है वे अपने आपको बडा बुद्धिमान् मानते है। वे मन में समझते है कि अभयकुमार के अवतार तो हम ही है। उनकी मनोदशा को देखकर मुझे स्मरण आता है कि जैसे पाकिस्तान का सिक्का विदेशो मे भले ही आठ आने मे भी न चलता हो, पर अपने देश मे तो वह पूरा रुपया ही है न !

अज्ञानी

मेरे पास अनेक वार अज्ञानी लोग आते है और वे उच्च स्वर से अपनी वाते सुनाते जाते है। मै विना खण्डन-मण्डन किये उनकी वात मौन रह कर सुनता जाता हू।

मेरे साथी मुझसे कहते है—आपने उनकी वाते चुपचाप कैसे सुनी ? मैं कहता हू—अज्ञानी की वातो का मण्डन तो किया ही नही जा सकता, खण्डन करने पर वे रूठ जाते हैं। दही का मथन करने से मक्खन निकल सकता है पर पानी का मथन करने से क्या कभी मक्खन निकलता है ? फिर व्यर्थ ही अज्ञानियो से विवाद कर अपने मस्तिष्क को भारी क्यो वनाया जाय ?

माया

मायावी व्यक्ति समझते है कि उनकी मायामय प्रवृत्ति को कोई नहीं जानता। मैं उन्हे प्रेम से कहता हू—भले ही आपकी मायावृत्ति को दूसरा न जाने, पर आप स्वय तो जानते ही है न !

शरीर में लगा हुआ काटा या काच भले ही दूसरो को दिखाई न दे पर स्वय को उसकी तीखी चुभन का अनुभव होता ही है न !

तान मिलाइए

एक दिन मैंने तवले से पूछा —वादक तुम्हे बुरी तरह पीटता है, तथापि तुम उससे नाराज न होकर उसकी ही तान में तान मिलाते जाते हो। इसका क्या रहस्य है ?

तवला, जो अपनी धुन मे मस्त था, बोला हम मार खाकर भी तान मिलाना जानते हैं पर खेद है कि मानव पर आधि, व्याधि और उपाधि रूपी अनेक मारे पडती है तथापि वह आत्मा रूपी मालिक के साथ तान मिलाना नही जानता। विना तान मिलाये समाधि मिल नही सकती।

मोह का आवरण

सर्दी का समय था। प्रात.काल चारो ओर कोहरा (धुन्ध) छाया हुआ था। पृथ्वी से आकाश तक कोहरे का साम्राज्य था। दूर की वस्तु दिखाई नही दे रही थी। न आगे साफ दिखाई दे रहा था, न पीछे और न अगल-वगल मे ही। जहा हम खड़े थे वही का थोड़ा सा भाग दिखाई दे रहा था।

मैं सोचने लगा—मोह का आवरण भी कोहरे की तरह ही है। मोहग्रस्त प्राणी की दृष्टि इतनी सकुचित हो जाती है कि वह कुछ भी नही देख सकता। उसकी दृष्टि केवल अपने परिवार और स्वजनो के अतिरिक्त कही जाती ही नही है। उन्ही के सुख मे सुखी और दु:ख मे दु खी होता है। मोह का आवरण हटा नही कि उसकी दृष्टि की सकीर्णता मिट जाती है। उसके लिए फिर 'वसुधैव कुटुम्वकम्' या 'विश्व भवत्येकनीडम्' की भावना साकार हो जाती है।

सरलता

मैने ऐसे वहुत से साधको को देखा है जो जीवन भर शृगाल की तरह साधना करते रहे। किन्तु जव उनका अन्तिम समय आया तव, रणक्षेत्र मे गया कोई वीर व्यक्ति जैसे अधिकाधिक दृढ निश्चय वाला हो जाता है, वैसे ही वे भी प्रकृति की भद्रता के कारण दृढ निश्चयी बन गए। उन्होने पवित्र मन से आलोचना-सलेखना व सथारा कर पण्डितमरण प्राप्त किया।

अनुभवियो ने बताया है कि पण्डितमरण उन्ही साधको का होता है, जिनका जीवन सरल होता है। सीधा चलनेवाला ही सिद्ध होता है।

सुख का स्रोत

अबोध बच्चे लकडी मे घोडे की कल्पना करते है। उस पर बैठकर स्वय तेज दौडते है पर कहते है कि देखो, मेरा घोडा कितना तेज दौड रहा है। वे घोडे पर बैठने का सुखानुभव कर नाचते है। बडे व्यक्ति उनके प्रस्तुत खेल पर हसते है। किन्तु उन्हे स्वयं पर हसी नही आती कि वे भी उन बालको की तरह ही भौतिक पदार्थो मे सुखानुभव कर रहे है। वस्तुत सुख पदार्थो मे नही, आत्मा मे है। आत्मा ही सुख का स्रोत है।

संचालक

दूसरे व्यक्तियो की अपेक्षा सचालक को अधिक सावधान रहने की आवश्यकता है। ट्रेन, प्लेन और मोटर मे बैठनेवाले भले ही नीद ले, उससे किसी प्रकार का खतरा नही है किन्तु ड्राइवर को जरा-सा नीद का झौका आया नही कि उसका निज का ही नही अपितु जो भी उसमे वैठे है उनसभी का जीवनखतरे मे पड जाता है।

सचालक की सावधानी से समाज की प्रगति है और उसकी असावधानी समाज के लिए खतरे की घटी है।

भगवान् महावीर ने इसीलिए एक नही अनेक वार 'समय गोयम ! मा पमायए' कहकर गौतम को सावधान किया था।

दान और अहंकार

मैंने एक वार वृक्ष से पूछा—वताओ ! आज तक तुमने कितने फलो का दान दिया है ?

वृक्ष ने टहनियों के वहाने सिर हिलाते हुए कहा—वावा, कौन हिसाव रखे ! जितना हमारे पास था उतना दे दिया है।

मै चिन्तन करने लगा—कहा ये वृक्ष और कहां मानव ! मानव एक पाई दान देगा तो उसका भी हिसाव रखेगा, अपने पास ज्यादा रखकर थोड़ा देगा और विश्व मे दानवीर की उपाधि से प्रख्यात होना चाहेगा पर सर्वस्व दान देने पर भी वृक्ष कभी अभिमान नही करता। काश ! मानव भी इन मूक दानवीरों से पाठ पढे तो कितना अच्छा है। दान देकर भूल जाओ, यदि नही भूलोगे तो मन मे अहकार उत्पन्न होगा।

आज भोजन जीवन के लिए नही, जीभ के लिए है, वस्त्रो का धारण लज्जा, शीत व ताप निवारण के लिए नही, प्रदर्शन के लिए है। वार्तालाप भी यथार्थ नही, सामयिक है। दान भी आत्मशुद्धि के लिए नही, वड़प्पन के लिए है।

मैंने देखा है उन व्यक्तियो को जो विराट् सभाओ मे जव वोलिया वोली जाती है तव हजारो लाखो रुपयो का मुक्त हाथ से दान देते है, पर कोई व्यक्ति क्षुधा से छटपटाता हुआ उनके सामने आता है तो उसे पाँच पैसे भी प्रसन्नता से नही दे सकते। हाँ, गालियो से उसका सत्कार जरूर करते है। क्या वे वस्तुत दानवीर है ? नही, उनके दान मे अहकार का विष मिला हुआ है।

प्रायश्चित्त

मानव ने वस्त्रों से कहा— मैने कल तुम्हे पीटा था, आज फिर पीट रहा हू। क्या तुम्हे लज्जा नही आती ?

वस्त्र ने धीरे से कहा—कुसग का प्रायश्चित्त तो करना ही पडता है न ?

मानव के पास इसका कोई उत्तर नही था।

अनुकूलता और प्रतिकूलता

अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियाँ ही जीवन का निर्माण करती है। साधक अनुकूल परिस्थितियो मे राज्ञता नही और प्रतिकूल परिस्थितियो मे खिन्न नही होता।

आडे और खडे तारो के सयोग से ही कपडा बनता है। किन्तु वे तार पृथक्-पृथक् न रहकर एक दूसरे से मिल जाते है। तारो का पारस्परिक मेल ही तो वस्त्र है।

एक सेठ को रात मे सिर दर्द रहा। जिससे उसे नीद नही आयी। नीद न आने से जो तस्कर चोरी करने आया था उसकी दाल नही गली—चोरी नही हुई। यह है प्रतिकूलता में अनुकूलता। प्रत्येक अनुकूलता मे प्रतिकूलता है और प्रत्येक प्रतिकूलता मे अनुकूलता छिपी हुई है।

क्रूर प्राणी

सिंह का बच्चा गुफा से बाहर घूमने के लिए आया। उसने देखा, शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित विराट् सेना रास्ते से जा रही है। वह घबरा गया। भय से कापता हुआ, वह पुन गुफा मे चला गया और माता की गोद मे छिपने का प्रयास करने लगा।

माता ने गर्जते हुए कहा—तू सिंह का पुत्र होकर भय से काप रहा है। याद रख, सिंह का बालक कभी किसी परिस्थिति मे भयभीत नही होता।

उसने कहा—माता, जरा बाहर जाकर तो देख, वह क्या है ?

सिंहनी ने गुफा के द्वार पर जाकर देखा—सेना जा रही है।

उसने कहा—बच्चा डर मत। ये मानव तो अपने जाति भाइयो को ही मारने के लिए जा रहे हैं।

विश्व में मानव ही ऐसा क्रूर प्राणी है, जो देश, धर्म, सम्प्रदाय, भाषा और प्रान्त आदि के नाम पर अपने भाइयो की हत्या करता आया है।

तप और जप

अनुभवी वैद्य कहते है—लोहभस्म, स्वर्णभस्म आदि भस्मो का सेवन करनेवाले को पथ्य के रूप मे दूध, घी आदि तर पदार्थ लेने चाहिए जिससे वे भस्मे शरीर मे उष्णता उत्पन्न न करे, शरीर के रोगो को नष्ट कर आरोग्यता प्रदान कर सके।

तप भी एक प्रकार की भस्म है। कर्मरूपी रोग को नष्ट करने के लिए तप रामबाण दवा है। तप रूपी भस्म को सेवन करने के साथ ही जप रूपी तर वस्तु का सेवन किया जायगा तो तप जीवन को अधिकाधिक उज्ज्वल बनायेगा, जीवन में विषमता को हटाकर समता का सचार करेगा।

हृदयपरिवर्तन

मोम ताप लगते ही पिघल जाता है, किन्तु पत्थर चाहे कितनी तेज धूप गिरे, वह नही पिघलता।

मू ग पानी मे भिगोकर ज्यो ही आग पर रखेगे वह पक जायेगा, मुलायम हो जायेगा, किन्तु मुद्गशैल (मू गसेलिया) को चाहे कितना भी भिगोया जाय या उबाला जाय, वह कभी पकता नही।

जिन साधको का जीवन मोम की तरह मुलायम है, मू ग की तरह है, उन्हे ही वीतराग की वाणी पिघाल सकती है, पर जो पत्थर व मू ग-सेलिया की तरह कठोर है, उनका हृदय कभी परिवर्तित नही होता।

चार प्रकार

एक विचारक ने मानव का चार वर्गो मे वर्गीकरण किया है। जो स्वय रोता है वह शैतान है। जो दूसरो को रुलाता है वह हैवान है। जो हमेशा खिले हुए गुलाव के फूल की तरह प्रसन्न रहता है वह इन्सान है, जो स्वय भी प्रसन्न रहता है और दूसरों को भी प्रसन्न रखता है वह भगवान् है।

शैतान सदा आर्तध्यान मे रहता है, एतदर्थ वह मरकर प्राय. तिर्यच गति मे जाता है।

हैवान सदा रौद्र ध्यान मे रहता है, इस कारण मरकर प्राय नरक में जाता है।

इन्सान धर्म ध्यान मे रहता है अत वह मरकर प्राय मानव व देवगति मे जाता है।

भगवान् सदा शुक्लध्यान मे रहते है, अत वे आयुपूर्ण कर मोक्ष मे जाते है।

भगवान् न वन सको तो कम से कम शैतान और हैवान तो न वनो। इन्सान वने रहोगे तो भी जीवन चमक उठेगा।

सन्त और बसन्त

सन्त और वसन्त भगत और जगत को क्रमश हरा भरा बनाने के लिए आते है। सन्त के दर्शन् से भगत खिलता है और बसन्त के आगमन से प्रकृति मुस्कराती है।

सन्त और वसन्त दोनो ही न अधिक गर्म होते है और न अधिक ठडे ही होते है।

जो भाग्यहीन होगा उसे ही सन्त और बसन्त का समागम नही सुहाता, पर भाग्यशाली तो उसके लिए सदा पलक-पावडे बिछाकर राह देखता है। किन्तु याद रखना, वे बार-बार नही आया करते।

बसन्त वर्ष मे एक बार आता है, पर सन्त के आने का तो ठिकाना हो नही, क्योकि वह अतिथि जो ठहरा ।

जीभ

एक दिन जीभ ने कहा—मानव ! तुम मुझे छोटी न समझो ! मैं चार अगुल की हूं, पर वडे से वडे व्यक्तियो को माप सकती हू ।

मुझे मे हड्डी नही है, इस कारण तुम विचार करोगे कि मुझमे शक्ति नही है, पर याद रखना, हड्डी न होते हुए भी मैं दूसरो की हड्डिया तुडवा सकती हू ।

मैं केवल स्वाद चखाने वाली ही नही, किंतु प्रेम के फूल वरसाने वाली भी हूं । मेरे पास खाद्य और वाणी ये दो विभाग है । मै दोनो को एक साथ सभालने की क्षमता रखती हू ।

मै स्वाद लेती हू किन्तु श्रेष्ठ त्यागी की तरह सदा निर्लेप रहती हू ।

मैं अपरिग्रह मे इतना अधिक विश्वास रखती हू कि जव तक एक कवल पास में हो, तव तक दूसरा कवल नही लेती ।

दांतो ने कहा

मानव ने दाँतो से कहा—प्राचीन युग मे तो तुम सौ-सौ वर्ष जिन्दा रहते थे, आज युवावस्था मे ही जबाव दे जाते हो, इसका क्या रहस्य है ?

उन्होने कहा—आज का मानव हमसे दिन मे दो वार नही, नौ वार पिसाई कराता है । इससे हमारी जीवनी शक्ति कम हो गई है । हमारे मालिक को हमारा हिलना नही सुहाता । वह तो यही चाहता है कि हम अच्छे मुनीम की तरह जमकर रहे । किन्तु खेद है, वह अधिक ठडे और अधिक उष्ण वस्तुओ से हमारी रक्षा नही करता

जिससे आज के युवको की तरह हम ऊपर से अच्छे दीखते है, किन्तु अनेक रोगो के शिकार हो गए है। हम कितनी प्रामाणिकता से कार्य करते है, यह हमसे नही, आतो से पूछो।

मैत्री

अच्छे व्यक्तियो की मैत्री श्रेष्ठ ग्रन्थ की तरह होती है। ग्रन्थ का ज्यो-ज्यो अभ्यास किया जाता है, त्यो-त्यो अधिकाधिक आनन्द की प्राप्ति होती है।

जब हम लोगो के बीच खडे होते है, उस समय हमारा उत्तरीय वस्त्र यदि सरकने लगता है तो हमारा हाथ स्वाभाविक रूप से उसको सभालने के लिए दौडता है। वैसे ही सज्जनो की मैत्री कष्ट के समय सभालने के लिए दौडती है।

विवेकी व्यक्तियो की मैत्री द्वितीया के चाँद की तरह दिन-प्रति-दिन बढती रहती है और अविवेकियो की मैत्री परिचय होने पर पूर्णिमा के चाँद की तरह प्रतिदिन क्षीण होती जाती है।

मित्रता और पवित्रता मे स्वाभाविकता चाहिए, कृत्रिमता नही। मित्रता को निभाना जितना कठिन है, पवित्रता को निभाना उससे भी अधिक कठिन है।

वृक्ष ने कहा

वृक्ष ने एक दिन पत्तो से कहा—यदि तुम्हे मेरे ऊपर छाया रहना है तो हरे-भरे रहो। जो सूखे और नीरस होते है, उनको मैं आश्रय देना पसन्द नही करता। उनके लिए मेरे पास स्थान नही है।

वृक्ष ने एक दिन हवा से कहा—पवनदेव! तुम मेरे पास आओ, मैं तुम्हे शीतलता प्रदान करूगा। रेगिस्तान मे तुम बहुत चलते हो, किन्तु मेरे अभाव मे तुम्हारा स्वभाव उग्र हो जाता है। तुम अधे हो जाते हो, तुम्हारी लोकप्रियता समाप्त हो जाती है। तुम तेज

चलकर लोकप्रिय वनना चाहते हो पर लोग तुम्हारे साथ नही चलते। समझदार व्यक्ति तो उस समय पीठ करके खड़े हो जाते है।

तीन प्रकार

विश्व में तीन प्रकार के मानव है—उत्तम, मध्यम और अधम।

उत्तम मानव वह है कि जो यह चिन्ता नही करता कि कोई उसका उपकार मानता है या नही। बदला पाने की इच्छा व भावना के विना ही वह उपकार करता रहता है।

मध्यम मानव वह है—जो उन्ही का उपकारकरता है, जो उसके किये उपकार का ऋण मानते है। वह अकृतज्ञ का उपकार करना पसद नही करता। भविष्य मे यह कभी मेरा उपकार करेगा, इसी विचार से वह किसी पर उपकार करता है।

अधम मानव वह है जो उपकारक के उपकार को भूलकर उसका अपकार करता है।

दीपक ने कहा

दीपक ने कहा—मुझमे चाहे जितना स्नेह क्यो न भरा हो, बाहर की हवा मुझे बुझा देतो है। यदि मुझे जीवित रखना चाहते हो तो बाहर की हवा मुझे न लगने दो।

मैं स्वयं प्रकाशमान होकर जीता हू, मैं अपने ऊपर किसी भी छत्र को रखना पसन्द नही करता। जो मुझ पर छत्र वनकर रहना चाहता है उसे मैं कालिमा से पोत देता हू।

मानव को तरह मेरी काया भी मिट्टी की वनी हुई है, किन्तु मेरी आत्मा ज्योतिर्मय है।

मानव जीवन को तरह मेरे जीवन का भी कोई भरोसा नही है। किन्तु मानव! तू मेरी तरह प्रकाश करता हुआ जीयेगा तो लोग तुझे भूलेगे नही।

ममता और समता

ममता और समता मे दिन रात का अन्तर है। ममता मारने वाली है तो समता तारनेवाली है। ममता का विकृत रूप ससार है और समता का शुद्ध रूप मोक्ष है। ममता मे आसक्ति है और समता मे विरक्ति है। जहाँ आसक्ति है वहा राग है, जहाँ विरक्ति है वहा त्याग है। उपाध्याय यशोविजयजी ने कहा है—'ममेति मूलं दु:खस्य'—दु ख का मूल ममता है।

अज्ञानी कौन।

भूल को भूल मानकर पुन भूल न करना दक्षता है। भूल को भूल मानकर भी उससे न वचना मूर्खता है और भूल को भूल ही न मानना पागलपन है।

भल न करनेवाला अरिहन्त देव है। सुधारनेवाला साधक है। भूल करनेवाला मानव है और उसको छिपाने वाला अज्ञानी है।

ब्रह्मचर्य

केवल स्त्री-पुरुष के ऐन्द्रियक-सम्बन्ध का त्याग करना ही ब्रह्मचर्य नही है, यह तो ब्रह्मचर्य की प्राथमिक भूमिका है।

ब्रह्म का अर्थ आत्मा है और चर्य का अर्थ है रमण करना। इन्द्रियो द्वारा विषयो का उपभोग करना अब्रह्म है और आत्मा के चिदानन्दमय चेतनस्वरूप मे रमण करना ब्रह्मचर्य है।

जीवन की सम्पूर्ण मानसिक वृत्तियो और कायिक प्रवृत्तियो पर, जव सयम का अधिकार होता है तभी ब्रह्मचर्य पूर्ण रूप से सिद्ध होता है।

जीवन मे भटकन

चीनी लोककथा है– महान् फिलोसफर याग-त्झे के पड़ौसी का

एक घेटा (भेडिया) जगल में गुम हो गया। घर के सभी सदस्य उसकी अन्वेषणा के लिए निकले। पड़ौसी ने याग-त्झे से कहा—आप मुझे अपना नौकर मदद के लिए देवे।

यांग त्झे ने कहा – बड़ा आश्चर्य है कि एक घेटे की खोज के लिए इतने अधिक आदमी तैयारी कर रहे हो ?

पड़ौसी ने कहा—जिस जगल मे घेटा गुमा है उसमे अनेक पगडंडियाँ है, झाडिया है। कम लोग उसकी तलाश नही कर सकते, न मालूम वह किस गली मे चला जाय। अनेक मानव होगे तो सुगमता से देखा जा सकेगा।

याग त्झे ने अपने नौकर को उनके साथ भेजा। खूब अन्वेषणा की गई पर घेटा नही मिला। वे सभी पुन. उलटे पैरो लौट आये।

फिलोसफर ने पूछा—ऐसा किस प्रकार हुआ ?

पड़ौसी ने बताया—उस जगल मे इतनी अधिक गलियाँ है कि घेटा किस रास्ते गया, पता न लग सका। सीधा रास्ता हो तो ढूंढ़ने मे दिक्कत नही होती। टेढे मेढे रास्तो मे तो मानव भी भूल जाता है।

याग त्झे यह सुनकर विचारो की गहराई में डुबकी लगाने लगे। उनके चेहरे पर चिन्ता की रेखाए उभरने लगी।

उनके प्रिय शिष्या ने पूछा—घेटे जैसे साधारण प्राणी के लिए, जो भी अपना नही, आप इतनी अधिक चिन्ता क्यो कर रहे है ?

याग-त्झे ने कहा – एक घेटा अटपटी पगडडियो मे अपना लक्ष्य भूल गया। मानव जीवन मे भी कभी-कभी ऐसा ही होता है। व्यक्ति के सामने जब अनेक मार्ग होते है, तो वह अपने लक्ष्य को भूलकर गलत रास्ते पर चला जाता है। शिक्षण जीवन को गुमराह बनाने के लिए नही, जीवन का सही लक्ष्य प्राप्त करने के लिए होना चाहिए।

समाधान का लंगर

सेना में भरती होने पर लार्ड माउन्टबेटन से परीक्षक ने पूछा—
—"समुद्र मे तूफान आयेगा, उस समय तुम क्या करोगे ?"
माउन्टबेटन ने दृढता के साथ उत्तर दिया लगर डाल दू गा।
परीक्षक ने पुन. पूछा—फिर तूफान आयेगा तो क्या करोगे ?
उसने पूर्ववत् ही कहा—फिर लगर डाल दू गा।

इस प्रकार परीक्षक ने अनेक बार तूफान आने को बात कही, उसके उत्तर मे माउ टबेटन भी लगर डालने की बात कहता रहा।

अन्त मे खीजकर परीक्षक ने कहा—तुम इतने लगर कहा से लाओगे ?

माउ टबेटन ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—जहा से इतने अधिक तूफान आवेंगे वहा से लगर भी आजावेगे।

जहा से समस्या का तूफान पैदा होता है वही पर समाधान क. लगर रहा हुआ है।

तोड़ना नहीं, जोडना

तथागत बुद्ध के सामने अगुलीमाल डाकू आया। बुद्ध ने उसे आदेश देते हुए कहा—सामने के वृक्ष से चार पत्तिया तोड लाओ।

वह शीघ्र ही गया और पत्तिया तोडकर ले आया।

बुद्ध ने पुन आदेश दिया कि इन्हे वृक्ष पर फिर से लगा दो।

अगुलीमाल ने निवेदन किया—भगवन् ! पत्तिया तोडी जा सकती है किन्तु जोडी नही जा सकती।

प्रस्तुत रूपक हमे बताता है कि निर्माण कठिन है, ध्वस सहज है। निर्माण करनेवाला कलाकार है, ध्वस करनेवाला मजदूर है। हमे मजदूर नही, कलाकार बनना है। जीवन का निर्माण करने वाला बनना है।

स्वीटा की गोली

डायविटीज की व्याधि से सत्रस्त रोगियो के लिए शक्कर के स्थान पर स्वीटा की गोलिया वनाई जाती है, जिन्हे चाय और दूध आदि मे डालने से मिठास आ जाती है। वह शक्कर की तरह हो जाता है। किन्तु शक्कर मे जो एनर्जी पैदा करने की शक्ति है वह उसमे नही होती। साथ ही उसमे 'फूड वैल्यू' जीरो है, उसमे शक्कर की शक्ति नही केवल मधुरता है।

वैसे ही कितने ही व्यक्तियो मे साधुता का वेष रहता है, किन्तु उनमे साधुता नही होती। अन्तर मानस में कपाय की ज्वालाएं सुलगती रहती हैं, विपय-विकारो का साम्राज्य रहता है। मैं सोचता हू कि वे भी स्वीटा की गोली की तरह ही है।

दान के तीन प्रकार

भारतीय चिन्तको ने दान के तीन प्रकार वनाये है—दूधसदृश, पानीसदृश और जहरसदृश।

जो दान गुप्तरूप से दिया जाता है, वह दान दूध के समान पौष्टिक है।

जो दान मित्र या परिजनो को कहकर दिया जाता है, वह पानी के समान तर होता है।

जिस दान का विज्ञापन किया जाता है, वह दान जहर के समान सहारक होता है।

घी अमृत है, किन्तु उसे कास्य पात्र मे मथा जाय तो वह जहर वन जाता है। वैसे ही दान अमृत है, किन्तु विज्ञापन करने से वह जहर वन जाता है।

आत्म-वंचना

जो व्यक्ति अकर्मण्य है, जिनके जीवन मे चेतनाशक्ति का अभाव

तो देश पुन आबाद हो जायेगा इसलिए उचित यही है कि हसनी को उल्लुओ की पत्नी ही घोषित किया जाये।" अपने निश्चय के अनुसार पचो ने निर्णय दिया कि—"हसनी उल्लू की पत्नी है, हस इसे भगाने का प्रयत्न कर रहा है।"

पचायत का फैसला सुनते ही हस के जैसे पर कट गए। आखिर करे क्या वह आँसू बहाता हुआ हसनी को वही छोडकर उडने लगा। हसनी छटपटाने लगी, उल्लुओ के नेता ने पुकार लगाई—"हस! रुक जाओ! अपनी पत्नी को साथ लेते जाओ! कभी सुना है तुमने, उल्लू के घर मे हसनी···?"

हस आश्चर्य विमूढ था। फिर यह नाटक किसलिए खेला गया?—हस ने पूछा!

—"तुम्हे समझाने के लिए! याद है रात को अपनी पत्नी के इस प्रश्न पर कि यह प्रदेश उजाड क्यो हो रहा है, तुमने हमारी ओर इशारा किया था ?"

हस ने शरमाते हुए कहा—"हाँ, कहा तो था, क्षमा करना"

उल्लू ने कहा—"बस, यही समझना था कि यह प्रदेश उल्लुओ के कारण नही, किन्तु न्याय-नीति की डीग हाँकनेवाले इन स्वार्थी मनुष्यो के कारण उजडा है।"

गाय और घोडा

जगल मे मस्ती से घूमती हुई गाय को मनुष्य ने कहा—"गौ! तुम तो हमारी माता हो, इस जगल मे अकेली घूमना तुम्हारे लिए ठीक नही, देखो कितने भय है? सिह-चीते आदि जगली जानवर तुम्हे मार डालेगे, चलो, मै पुत्र को तरह तुम्हारी सेवा करूँगा और रक्षा भी!" मनुष्य की मीठी बातो से खुश होकर गाय उसके घर पर आकर रहने लगी।

जगल में ही हरी-हरी घास चरते हुए घोडे को देखकर

मनुष्य ने कहा—"अच्छा, तुम तो मेरे मित्र हो। इस जगल मे तुम कितने अरक्षित ! और कितने एकाकी हो ? मेरे घर चलो, तुम्हे खाने के लिए दाना दूंगा, सेवा करूँगा और शत्रुओ से रक्षा भी !"

मनुष्य के प्यार को देखकर घोड़ा उसके साथ घर पर आकर रहने लगा।

एक दिन गाय ने देखा—"मनुष्य घास-पात खिलाकर दूध निकाल लेता है, उसका बच्चा भूख से दुबला होता जा रहा है और मनुष्य गाय का दूध पीकर पहलवान बनने का प्रयत्न कर रहा है !"

मनुष्य की चापलूसी का पर्दा गाय की आखो पर से हट गया—वह फिर जंगल की ओर भागना चाहती थी पर देखा, धूर्त मनुष्य तो पहले ही उसे खूंटे से बाध चुका है।

एक दिन घोडे ने देखा, "मनुष्य उसकी पीठ थपथपा कर उस पर चढ रहा है, थोडा सा दाना डाल कर दिन भर दौडाता रहता है। घोडा फिर जगल की आर दौड जाना चाहता था, पर देखा, चालाक मनुष्य पहले हो लगाम डाल कर उसे अपने वश मे कर चुका है।

उसी दिन से गाय रभा कर मनुष्य की चापलूसी को धिक्कारती है और घोडा हिनहिनाकर उसे गालियाँ देता है।

काने और लंगड़े

सुल्तान वैजद, तैमूर के साथ युद्ध करता हुआ पराजित हो गया। जव वैजद को तैमूर के सामने लाया गया तो तैमूर उसे देखकर खिलखिला कर हस पड़ा।

सुलतान वैजद को यह व्यवहार खटका। उसने कहा "तैमूर ! युद्ध मे विजयी होकर इतना गर्व न करो, स्मरण रखो जो दूसरो की शिकस्त पर हसता है, वह एक दिन अपनी शिकस्त पर आँसू भी वहाता है।"

काने बैजद की वात को सुनकर लगडा तैमूर अट्टहास करते हुए बोला—'बैजद ! मै इतना मूर्ख नही हू कि इस छोटी सी जीत पर इतना अधिक प्रसन्न होऊँ ? मुझे हसी तो इसलिए आ रही है कि खुदा बद ने हम काने और लगडे लोगो को कैसे वादशाह बना दिया ?"

अक्ल के काने और हिये के लगडो के रूप मे क्या आज इतिहास अपने को दुहरा तो नही रहा है ?

भेद और समझौता

सुई और कैंची मे बडप्पन के प्रश्न को लेकर विवाद हो गया ! कैंची ने कहा— "तुम्हारी भी कोई गति है, धीरे-धीरे चलती हो,फिर धागा न हो तो तुम्हारा चलना भी निरर्थक ! यह परावलबी जीवन ! सछिद्र देह और उस पर भी वड़प्पन का गर्व ? क्या मजाक है।"

सुई ने उत्तर दिया—"बहन कैंची ! तुम जब चलती हो तो अखण्ड वस्त्र को खण्ड-खण्ड करती चली जाती हो, टुकडे करना, भेद पैदा करना—इतनी ओछी नीति ! और फिर वडप्पन का अहकार ? तुम्हारे किए टुकडो को जोडने के लिए लोग मुझे ही याद करते है।

दोनो का विवाद चल ही रहा था कि दर्जी ने अपना काम शुरू किया—कैंची से कपडा काटा और उसे जमीन पर ही कही डाल दिया। अव सुई से सिलाई की और फिर उसे टोपी मे लगा लिया।

मैने देखा—दर्जी की टोपी मे लगी सुई कैंची पर व्यग्य कस रही थी– दुनियाँ आखिर तो समझौता करानेवाले को ही सिर पर चढाती है। और भेद नीति चलने वाले यो पैरो मे पडे ठोकरे ही खाते है।"

कैंची के पास इसका कोई उत्तर नही था।

जीभ

एक राजा ने अपने वृद्ध मत्री से पूछा—विश्व में सबसे मीठी क्या चीज है ?

वृद्ध मत्री ने जवाब दिया—महाराज ! जीभ सबसे मीठी है।

और सबसे कड़वी क्या चीज है ? राजा ने फिर पूछा !

महाराज ! जीभ ही सबसे कड़वी है—वृद्ध मत्री ने पुन अपनी बात दुहराई !

इसका प्रमाण ? राजा ने पूछा !

मंत्री ने राजा के गौरव की प्रशस्ति प्रारम्भ की, राजा प्रफुल्ल हुआ सुनता जा रहा था, जब रहा नही गया तो बोल उठा—'वाह ! मत्री तुम्हारी वाणी में तो अमृत भरा है !' मत्री ने प्रशस्तिपूर्ण करते-करते एक ऐसी बात कह दी कि राजा तिलमिला उठा—

—मुँह मे क्या जहर भर रखा है !"

मत्री ने विनयपूर्वक कहा—'महाराज ! अविनय माफ हो ! आप के प्रश्न का ही यह उत्तर दिया है।'

हीरा और ओसकण

सूर्य की सुनहली किरणो मे केले के पत्ते पर पडा ओस कण हीरे-सा चमक रहा था। पास ही मे पडा एक हीरा अपनी शुभ्र किरणें बिखेर कर उसकी चमक से होड कर रहा था। एक पथिक ने देखा और हीरे से पूछा—क्या यह भी तुम्हारा भाई-बद है, देखो न तुम्हारे जैसी ही शुभ्र किरणें इसमे निखर रही है ?"

हीरे ने ओसकण की ओर तिरस्कारपूर्वक देखते हुए कहा—"इसके साथ मेरी क्या तुलना ? यह ओसकण अभी सूख जायेगा, और मैं युग-युग तक ऐसे ही चमकता रहूगा, कहा मै, कहां यह ?"

तभी प्यास से छटपटाती एक नीली चिड़िया ने हीरे को जलकण

समझ कर चोंच मारी, और हलकी-सी चोट से मुड़ी धुन कर रह गई।

ओसकण ने चिडिया को पुकारा—"चिड़िया रानी! तुम्हारी प्यास यह नही बुझा सकता, आओ मैं बुझाऊँगा"—और मुस्कराता हुआ ओसकण चिडिया के लिए समर्पित हो गया।

पथिक ने कहा—इस सवा लाख के हीरे मे तो एक ओसकण अधिक महत्वपूर्ण है, जो किसी प्यासे की प्यास मिटाने के लिए स्वय को निछावर कर देता है।

झुकने की कला

अल्हड नदी उमड-घुमड कर पूरे वेग मे वह रही थी। उसके मार्ग मे जो भी वृक्ष सिर उठाकर खडा था, उसे एक ही आघात में धराशायी बनाकर अपना रास्ता साफ करती जा रही थी।

मैंने देखा—पूर उतर जाने पर केवल दुबले-पतले कुछ बेत के वृक्ष जगल में खडे हुए थे जो अपने साथियो की सवेदना मे सिसक रहे थे।

मैंने आश्चर्य के साथ पूछा—"विशालकाय वृक्षो को पछाड़ देने वाला पूर, तुम्हारे जैसे दुवले-पतले बेतो को नही उखाड पाया—इसका क्या रहस्य है?"

साथियो के शोक मे उदास बेत वोले—हमने अपने साथियो को वहुत कुछ समझाया—पूर आ रहा है, झुक जाओ? मगर किसी ने नही सुनी, अपनी आन मे अकडे रहे और पूर मे बह गये। हम सब नीचे झुक गए इसलिए बचे रहे। बेत हवा के झोके के साथ चट् चट करके जैसे सिसकिया भर रहे थे।

मैंने देखा—इस दुनिया म अकड कर रहने वाला अधिक दिन नही टिक सकता। जिसे झुकने की कला आती है, वह बेत की भाति सकटो मे भी अपना जीवन सुरक्षित रख सकता है।

दुराग्रह

- प्रकाश अपने रूप को धरती से ज्योतित कर सकता है, किन्तु यदि कोई जन्माध व्यक्ति उसकी सत्ता से इन्कार करके ठोकरे खाता रहे, तो इसमे प्रकाश का क्या दोष है ?
- सत्य अपने अस्तित्व को उभार कर रख सकता है, कितु यदि कोई दुराग्रही अपनी बात पर ही डटा रहे तो इसमे सत्य का क्या दोप ?

राजस्थान की एक लोककथा है—किसी किसान ने अपनी पत्नी से कहा—"यदि कोई पाच और पाच को दस सिद्ध करके वतादे तो मैं उसे अपनी भूरी भेस दे डालूँ।"

भोली पत्नी ने कलेजे पर हाथ रखते हुए कहा—"ना वावा ! ऐसा करोगे तो वाल वच्चे भूखे नही मर जायेगे ? पाच और पाच तो दस होता ही है।"

—"यह तो मुझे भी मालूम है, पर मैं इसे स्वीकार करूँ तव न ?" किसान ने व्यग्य पूर्वक हसते हुए कहा।

सत्य के जिज्ञासुओ में आज उस किसान के जाति-वन्धुओ की सख्या कितनी है ?

कर्तव्यपथ पर सावधान रहो !

वेतार यत्र के सचालक पद के लिए वहुत से उम्मीदवार कार्यालय के बाहर खडे गपशप कर रहे थे। बातो का दौर पडा तो ऐसा कि उन्हे यह ख्याल भी नही रहा कि वे किसी गोष्ठी मे वहस करने आये है, या किसी पद के लिए 'इण्टरव्यू' देने। उसी समय ध्वनि विस्तारक यत्र पर खटखट की आवाज हुई, पर जैसे किसी ने कुछ सुना ही नही।

एक युवक आवाज सुनते ही भीतर गया और दूसरे ही क्षण नियुक्ति पत्र लिए मुस्कराता हुआ वाहर आ गया। युवक

के हाथ मे नियुक्ति पत्र देखकर सभी विस्मित हुए देखने लगे—पत्र पर लिखा था—"जो हमारा सदेश सुनकर सबसे पहले भीतर आयेगा, उसी के लिए यह नियुक्ति पत्र तैयार है।

जो कर्तव्य पालन के लिए सदा सावधान रहता है जीवन में उसी को सफलता का प्रथम दर्शन होता है।

भाषा नहीं, भाव

भक्ति मार्ग मे भाषा की नही, भाव की मुख्यता होती है। मुंह को नही, मन को महत्त्व दिया जाता है। रूप को नही, प्रेम को पूजा जाता है।

रघुपति राम जब निषादराज 'गूह' के अतिथि बने तो उसने अनन्य भक्ति पूर्वक उनका स्वागत किया। उसका सरल और भावुक हृदय प्रेम-विह्वल होकर राम को 'तू-तू' सबोधन करने लगा, तो लक्ष्मण ने उसे टोका—"निषादराज' किस से, क्या बात कर रहे हो ?" राम ने लक्ष्मण को झकझोरते हुए कहा—'लक्ष्मण ! इसके टूटे-फूटे शब्दो को नही, किंतु अनन्य निष्ठा के साथ उछ्वसित होने वाले प्रेम को देख !'

तीन गुण

एक बार गोपियो ने कृष्ण कन्हैया से कहा—"हम इतनी सुन्दर है, फिर भी आपको उतनी प्यारी नही, जितनी प्यारी यह काली कलोटी बासुरी है ! हमे दूर दूर रखते हो, और इसे जब देखो तब मुह लगाए रखते हो !"

श्रीकृष्ण ने मुस्कराकर कहा—"मैं रूप से नही, गुण से प्यार करता हू। मेरी बासुरीमें तीन गुण है, इसीलिए यह मुझे प्यारी है।"

'प्यार हो तो अवगुण भी गुण दिखाई देते हैं'—मुंह मटकाते हुए गोपियो ने कहा ! फिर भी सुने कि इस में कौन से तीन गुण है ?

श्रीकृष्ण ने कहा—'इसमें पहला गुण है—विना वोलाए नही वोलती !

दूसरा गुण—जव भी वोलेगी, तभी मीठा !

तीसरा गुण—हृदय विल्कुल सरल है, कही गाठ नही !'

श्रीकृष्ण अव गोपियो की ओर देख रहे थे और गोपियो की गरमाई हुई पलकें भारी होकर यो नीचे झुक गई थी मानो वे आत्म-निरीक्षण कर रही हो ।

थैली और झोली

एक सत के हाथ में झोली थी, और सामने से आते एक सेठ के हाथ मे थैली थी । झोली को नीची गर्दन किए देखकर थैली का मस्तक दो वास ऊंचा चढ गया । गर्व से वह बोली—"झोली, आखिर हो तो तुम भी मेरे ही वस्त्र-वश की कन्या ! पर कहा तुम, कहा मैं ?"

तुम दीन-गरीव फकीरो की सगिनी, दर-दर पर रोटी को मुहताज ! सुवह से शाम तक भटकती रहती हो, फिर भी खाली की खाली ! कहा मे ! रात-दिन मस्ती से सेठो के मृदु कर स्पर्श का आनन्द लेती हुई तिजोरियो की शीतल छाया मे आराम करती हू ।

झोली ने मुस्कराकर कहा—बहन, कितनी भोली हो तुम ! देखती नही, तुम्हारा स्वामी रात-दिन तुम्हारे मुह को कसकर वद किए रखता है, सास भी लेने नही देता और तुम इसे सुख मानती हो? एक मैं भी हू, कि सदा उन्मुक्त ! खुला-खुला मन ! आजाद देह ! जो आनन्द इस आजादी मे है, वह तुम्हारे वधन मे कभी नसीव हो सकता है ?

भाग्य का चमत्कार

कुछ लोग नियति एव भाग्य नामक तत्व का उपहास किया

करते है। किंतु वास्तव मे वे भी 'भाग्य के चमत्कार' से इन्कार नही हो सकते। हम जिसे भाग्य कहते है, वे इसे सयोग' या चान्स भी कह सकते है, आखिर बात एक ही है।

भाग्य जब अच्छा होता है तो भूल भी वरदान बन जाती है, सामान्य प्रयत्न भी अद्वितीय फलदायी सिद्ध हो जाता है।

कहते है जगत सेठ रायबहादुर धनपतसिह जी के दादा किसी जहाज में बैठकर विदेश जा रहे थे। तेज हवा के कारण जहाज डगमगाने लगा तो नाविक ने कहा—जहाज मे वजन कम है, इस कारण डगमगा रही है। जगत सेठ के सकेत पर नाविक ने जहाज को एक टापू पर रोका और कुछ पत्थर उसमे भर दिये। आगे पहुच कर देखा तो पता चला कि वह पत्थर बहुत कीमती-पन्ना है।

नाविक कोलम्बस भारत की खोज करने को निकला था तूफानो मे भटकता हुआ आखिर अमरीका की तर्फ पहुचा और अमरीका का प्रथम शोधकर्त्ता बनने का श्रेय प्राप्त कर लिया।

कागज बनाते भूल हो जाने पर एक कारीगर ने स्याही चोस बना दिया और उसके आविष्कर्ता का सेहरा उसके सर बधा।

सच है—भाग्य भूलो को भी वरदान बना देता है।

निर्विकार सेवा

सत कवि तुलसीदास जी का एक प्रसिद्ध वचन है—

तुलसी या ससार मे सब ते मिलिए धाय।
का जाने किहि भेस मे नारायण मिल जाय।

मनुष्य को, भगवान के रूप मे देखकर उसकी सेवा करना चाहिए, हो सकता है किसी नर मे नारायण मिल ही जाय। अत प्रत्येक प्राणी के सम्मुख निर्विकार एव निस्पृहभाव से स्नेह, सम्मान एव सेवा का आचल फैलाकर आत्मीयभाव से सेवा सत्कार करना—यही सार्वभोम मैत्री एव वसुधैव कुटुम्बकम् की साधना है।

एक समय एक राजपुत्र किसी गुरु के आश्रम मे विद्याध्ययन करता था । एक बार आश्रम में एक ऐसा व्यक्ति आया जिसकी राजवंश के साथ परम्परागत शत्रुता थी । आश्रम में आये अतिथि की सपूर्ण सद्भाव के साथ सेवा होती थी, पर राजपुत्र के व्यवहार मे इस बार अन्तर था । उसका हृदय उस व्यक्ति से घृणा कर रहा था । गुरु ने राजकुमार की भावना को ताडा, और कहा—"वत्स ! अपनी शिक्षा सफल करना चाहते हो तो अतिथि की निर्लिप्त भाव से सेवा करो ।"

राजपुत्र को गुरु की यह शिक्षा पसन्द नही आई । आवेश मे आकर वह अपने पिता के पास गया और बोला—आपने मुझे कैसे गुरु के पास शिक्षा प्राप्त करने भेजा ? सबके साथ एक जैसा मैत्री व्यवहार कैसे किया जा सकता है, और इसका क्या मतलब है ?

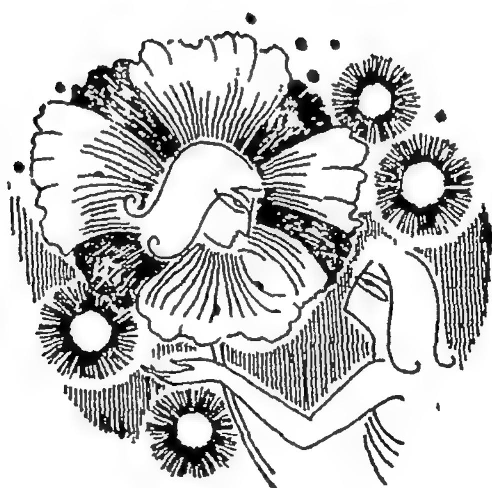
विचारशील राजा ने पुत्र का आवेश शात करते हुए कहा—"समय पर कभी इसका उत्तर दूँगा ।"

एक बार राजा अपने पुत्र के साथ सध्या-भ्रमण को निकले । वापस लौटते-लौटते झुरमुट अधेरा हो चला था । सहसा राजा किसी शिला खड से टकराया, एक बहुमूल्य मणि उनके गले के हार मे छिटककर कही जा पडी । राजा वही रुक गया । राजपुत्र घोडे से नीचे उतरा और आस-पास की धूल व ककर पत्थर की एक गठरी बाध ली ।

राजा ने आश्चर्यपूर्वक देखकर कहा—"बेटा ! मणि तो केवल एक खोई है, व्यर्थ ही इतने ककर-पत्थर क्यो इकट्ठे कर रहे हो ?"

"तात ! इस समय अधकार होने के कारण यह पहचान पाना असभव है कि कौन सा रत्न है और कौन-सा पत्थर ! इसलिए अभी तो सबको बाधकर ले चलता हू, प्रात सूर्य के प्रकाश मे मणि को पहचानकर पत्थर को फेक दूगा ।"

राजा मुस्कराया। पुत्र को निकट बुलाकर स्नेहपूर्वक कहा—'तुम्हारे पूर्व प्रश्न का यही उत्तर है। असल-नकल का विचार तो प्रकाश पाने पर ही होता है, हम जब तक अज्ञान-ग्रस्त है, तब तक प्रत्येक प्राणी के लिए हमें अपने सद्भाव एव मैत्री का आचल फैलाते रहना चाहिए, क्या मालूम किस रूप में, भक्त मे भगवान, नर मे नारायण के दर्शन हो जाये। इसलिए हमारी सेवा और भक्ति विकल्पो से से मुक्त, निर्विकल्प होनी चाहिए।''



लेखक की महत्त्वपूर्ण कृतियां

१ ऋषभदेव एक परिशीलन (शोध प्रवन्ध) मूल्य ३)०० रु०
२ धर्म और दर्शन (निवन्ध) मूल्य ४)०० रु०
दोनो के प्रकाशक—सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामडी आगरा–२

३ भगवान् पार्श्व. एक समीक्षात्मक अध्ययन
(शोध प्रवन्ध) मूल्य ५)०० रु०
प्रकाशक—प० मुनि श्रीमल प्रकाशन
जैन साधना सदन २५६ नानापेठ पूना—२

४ साहित्य और संस्कृति (निवन्ध) मूल्य १०)०० रु०
प्रकाशक—भारतीय विद्या प्रकाशन
पो० वोक्स १०८-कचौडी गली, वाराणसी—१

५ चिन्तन की चांदनी (उद्‌वोधक चिन्तनसूत्र) मूल्य ३)०० रु०
६ अनुभूत के आलोक मे (मौलिक चिन्तन सूत्र) मूल्य ४)०० रु०
दोनो के प्रकाशक—श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, पदराडा (राज०)

७ विचार-रश्मियां (विचार प्रधान सूक्त) मूल्य ७)०० रु०
८ संस्कृति के अचल मे (निवन्ध) मूल्य १)५० रु०
प्रकाशक—सम्यक् ज्ञान प्रचारक मडल, जोधपुर

९ कल्प सूत्र मूल्य २५)०० रु०
प्रकाशक—श्री अमर जैन आगम शोध सस्थान
गढ सिवाना, जिला वाडमेर (राजस्थान)

१० अनुभव रत्न कणिका (गुजराती, चिन्तन सूत्र) मूल्य २)०० रु०
सन्मति साहित्य प्रकाशन व स्थानकवासी जैन सघ
उपाश्रयलेन घाटकोपर वम्वई—८४

११ चिन्तन की चांदनी (गुजराती भाषा मे)
प्रकाशक—लक्ष्मी पुस्तक भडार, गाधी मार्ग (अहमदावाद)

१२ फूल और पराग (कहानियाँ) मूल्य १)५० रु०
१३ खिलती कलियाँ: मुस्कराते फूल (लघु रूपक) मूल्य ३)५० रु०
१४ भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण: एक अनुशीलन
मूल्य १०)०० रु०
१५ बोलते चित्र (शिक्षाप्रद ऐतिहासिक कहानियाँ) मूल्य १)५० रु०
१६ बुद्धि के चमत्कार मूल्य १)५० रु०
१७ प्रतिध्वनि (विचारोत्तेजक रूपक) मूल्य ३)५० रु०

सभी पुस्तको के प्रकाशक—
श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, पदराडा (उदयपुर, राज०)

सम्पादित

१८ जिन्दगी की मुस्कान (प्रवचन सग्रह) मूल्य १)४० रु०
१९ जिन्दगी की लहरें ,, ,, मूल्य २)५० रु०
२० साधना का राजमार्ग ,, ,, मूल्य २)५० रु०
२१ रामराज (राजस्थानी प्रवचन) मूल्य १)०० रु०
२२ मिनख पणा रौ मोल (राज० प्रवचन) मूल्य १)०० रु०

सभी पुस्तको के प्रकाशक—सम्यक् ज्ञान प्रचारक मडल, जोधपुर

२३ ओंकार एक अनुचिन्तन मूल्य १)०० रु०
२४ नेमवाणी (कविवर प० नेमिचन्द जी म० की
कविताओ का सकलन) मूल्य २)५० रु०

प्रकाशक—श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, पदराडा उदयपुर, राज०

२५ जिन्दगी नो आनन्द (गुजराती प्रवचन) मूल्य ३)२५ रु०
२६ जीवन नो झकार ,, ,, मूल्य ४)७५ रु०
२७ सफल जीवन ,, ,, मूल्य ३)७५ रु०
२८ स्वाध्याय ,, ,, मूल्य ०)५० रु०
२९ धर्म अने सस्कृति (गुजराती निवन्ध) मूल्य ४)०० रु०

प्रकाशक—लक्ष्मी पुस्तक भडार गाधी मार्ग, अहमदावाद—१

३० कल्पसूत्र (गुजराती सस्करण) द्वितीय आवृत्ति मूल्य ७)५० रु०

प्रकाशक—सुधर्मा ज्ञान मदिर मेघ जी थोमण जैन
धर्म स्थानक १७०, कादावाडी, वम्बई—४

शीघ्र प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ

३१ धर्म अने दर्शन (गुजराती सस्करण)
३२ चिन्तन के क्षण
३३ महावीर जीवन दर्शन
३४ महावीर साधना दर्शन
३५ महावीर तत्त्व दर्शन
३६ सास्कृतिक सौन्दर्य
३७ आगम मथन
३८ अन्तगडदशा सूत्र
३९ अनेकान्तवाद : एक मीमासा
४० सस्कृति रा सुर
४१ अणविध्या मोती
४२ जैन लोक कथाएँ (नौ भाग)
४३ जैन धर्म : एक परिचय
४४ ज्ञाता सूत्र एक परिचय
४५ महासती सोहनकु वर जी व्यक्तित्व और कृतित्व

मुनि श्री के सभी प्रकाशन इस पते पर प्राप्त हो सकेंगे।

श्री लक्ष्मी पुस्तक भण्डार

गाँधी मार्ग, अहमदाबाद-१